ज्ञानामृत

जून, 1989 वर्ष 24 ❋ अंक 12 मूल्य 1.75

सोनीपत में आध्यात्मिक मेले का उद्घाटन दृश्य जिसमें भाग ले रहे हैं भ्राता के. के. जालान, उपायुक्त, ब्र. कु. दादी चन्द्रमणि जी, दादी हृदयमोहिनी जी तथा अन्य।

थाना में आध्यात्मिक मेले के उद्घाटन अवसर पर भ्राता नानाभाई ठक्कर तथा भ्राता रामचन्द्र ठाकुर, ब्र. कु. दादी प्रकाशमणि जी को सिल्वर कप भेंट करते हुए।

रायपुरः भारत के प्रधानमंत्री भ्राता राजीव गांधी के पधारने पर ब्र. कु. बहिनों उन्हें आत्म-स्मृति का तिलक लगाते हुए तथा उनका स्वागत करते हुए।

कसौलीः चरित्र निर्माण मेले का उद्घाटन करते हुए भ्राता एस. सी. डोगरा जी। ब्र. कु. भाई बहिनें शिव बाबा की याद में खड़े हैं।

हाँसीः बुवानीखेड़ा में आयोजित चरित्र निर्माण आध्यात्मिक मेले के उद्घाटन समारोह में मंच पर विराजमान हैं ब्र. कु. लक्ष्मण जी, ब्र. कु. लक्ष्मी जी, ब्र. कु. अचल जी, भ्राता रामकुमार वर्मा जी अपने विचार प्रकट करते हुए।

माऊँट आबू: दक्षिण भारत की प्रसिद्ध आदि शंकराचार्य ज्योति दिग्विजय यात्रा के ब्र. कु. ई. वि. विद्यालय के मुख्यालय में पधारने पर मैनेजर तथा यात्रा के अन्य सदस्य ब्र. कु. भाई-बहिनों के साथ।

रायपुर अहमदाबाद में आयोजित 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार महोत्सव' के अवसर पर व्यापारी वर्ग के सम्मेलन में मंच पर ब्र. कु. दादी प्रकाशमणि जी, सरला जी तथा अन्य उपस्थित हैं।

थाना: सुखमय संसार आध्यात्मिक मेले में सार्वजनिक कार्यक्रम में मंच पर (बाएं से) भ्राता मगन भाई शाह ठक्कर, भ्राता वसंत बापट जी, ब्र. कु हृदयमोहिनी जी, ब्र. कु. नलिनी जी तथा भारती जी उपस्थित हैं।

Regd. No. 10563/65-D,

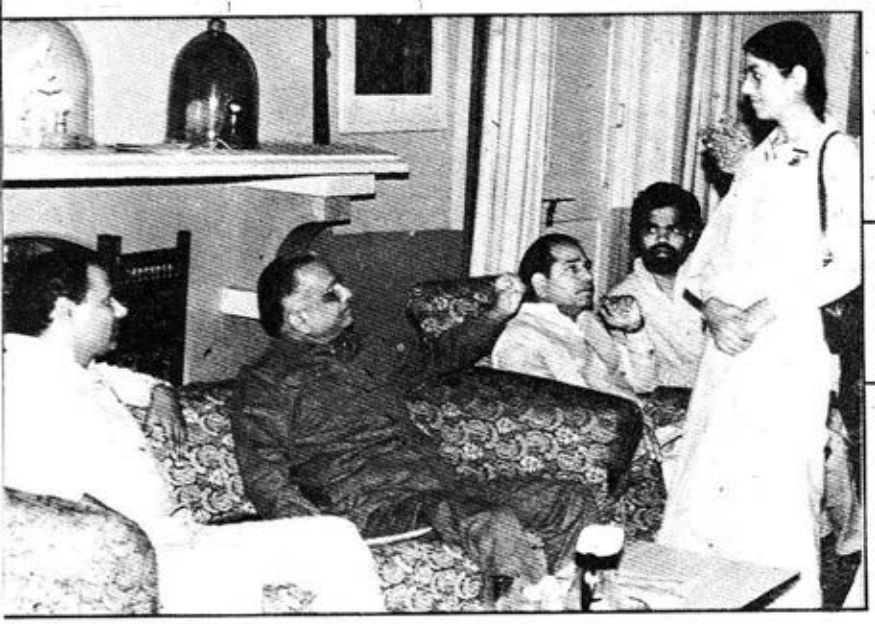

झालावाड़: राजस्थान के मुख्यमंत्री भ्राता शिवचरण माथुर जी को ईश्वरीय सौगात देने के पश्चात ज्ञान वार्तालाप करते हुए ब्र. कु. मीन बहिन।

कन्टाई (मिदनापुर) में नई गीता पाठशाला का उद्घाटन करती हुई ब्र. कु. कानन बहिन।

पानीपत: हरियाणा के खाद्य एवं रसद मंत्री हुक्म सिंह जी को ईश्वरीय सौगात देते हुए कु. सरला बहिन।

अमृत-सूची

१.	आक्रमण और प्रहार की प्रवृति (सम्पादकीय)	२.
२.	हे वसुन्धरा की परम विभूति	४.
३.	क्रोध से विवेक नष्ट होता है	५.
४.	भीष्म प्रतिज्ञा	८.
५.	वर्षा सुख शान्ति की	९.
६.	और आप क्या देंगे?	१०.
७.	गुणमूर्त मीठी माँ की सुनाई हुई धारणायुक्त प्वाइन्टस	१२.
८.	माँ सरस्वती के प्रति	१३.
९.	नीयत का प्रभाव (कहानी)	१४.
१०.	सच्चा दोस्त—परमपिता परमात्मा	१६.
११	विशेषात्मा	१७.
१२.	सर्वश्रेष्ठ धर्म	१८.
१३.	स्व-उन्नति तथा सर्व की उन्नति के लिये कुछ धारणा बिन्दु	२१.
१४.	रूहानियत की खुशबू से सफलता	२४.
१५.	जीवन सुरक्षा-कवच—सहनशीलता	२५.
१६.	हमारे नये सेवास्थान	२७.
१७.	मन-वशीकरण मन्त्र	३०.
१८.	सचित्र सेवा समाचार	३२.

'ज्ञानामृत' सम्बन्धी सूचनाएं

प्रिय पाठकगण,

'ज्ञानामृत' के वर्ष २४ का अन्तिम का अंक आप के समक्ष है। जुलाई १९८९ का अंक ज्ञानामृत के २५वें वर्ष का प्रथम अंक होगा । जैसे पिछले अंक में सूचित किया गया था कि आप 'ज्ञानामृत' के सदस्यों की संख्या शीघ्र अति शीघ्र भेजने का कष्ट करें। यदि २० जून १९८९ तक 'ज्ञानामृत' के सदस्यों की संख्या शुल्क सहित भेज देंगे तो हमें सुविधा होगी।

आप को यह भी लिखा गया था कि 'ज्ञानामृत' के इस रजत जयन्ति वर्ष में एक कैलेन्डर भी छपाया जा रहा है। हम उतने ही कैलेन्डर छपवाएंगे जितनी संख्या २० जून तक हमें प्राप्त हो जाएगी। यदि आप २० जून १९८९ तक संख्या नहीं भेजेंगे तो हम आपको कैलेन्डर देने में असमर्थ होंगे।

ज्ञानामृत का शुल्क निम्न है-

वार्षिक शुल्क — २४ रुपये
अर्द्ध वार्षिक शुल्क — १२ रुपये
विदेशों के लिये — १५० रुपये
आजीवन सदस्यता — २५० रुपये

कृपया शुल्क केवल 'ज्ञानामृत' 'Gyan Amrit' के नाम ही भेजें।

व्यवस्थापक
ज्ञानामृत कार्यालय
बी ९/१९ कृष्ण नगर,
देहली-११००५१

बस्तर (म. प्र.) आदिवासी ग्राम ककनेर में ब्रह्माभोजन का महत्व आदिवासी भाई-बहिनों को समझाती हुई ब्र. कु. कमला जी

सम्पादकीय

आक्रमण और प्रहार की प्रवृति

द्वापर युग से मनुष्य में कई प्रकार की देहाभिमान-जनित प्रवृत्तियाँ प्रकट होने लगी थीं। उनमें से एक दूषित प्रवृत्ति 'आक्रमण' अथवा 'प्रहार' की प्रवृत्ति थी। तब मनुष्य इस प्रवृत्ति के कारण अपने से कमज़ोर लोगों को दबोचकर उन पर हावी होने लगा। अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए वह दूसरों पर आक्रमण करके भी उन्हें अपने अधीन करने लगा। उन पर हुकूमत करने, रोब डालने अथवा अधिकार जमाने की ये आदत उसकी पक्की होने लगी। दूसरों को दास बना कर रखना और उन्हें अपनी बागडोर में बांधकर चलाना उसका एक संस्कार-जैसा बनने लगा। स्वार्थ के साथ इस प्रवृत्ति ने मिल कर मनुष्य को अन्यायी, अत्याचारी और निर्दयी बना दिया। कुछ राजा लोग इस प्रवृति के अनुसार बड़ी-बड़ी सेनाएँ बना कर केवल पड़ोसी देशों पर आक्रमण नहीं करने लगे बल्कि विश्व पर राज्य करने की कामना से व्याकुल होकर उन्होंने अनेक देशों पर प्रहार किये अथवा उनका घेरा डाला। शासन और सत्ता को प्राप्त करने की प्रवृत्ति के कारण उन्होंने हज़ारों-लाखों का रक्तपात भी किया, कई नगर भी उजाड़ डाले और बस्तियां एवं आबादियाँ भी वीरान कर डालीं। उन्होंने रोती माताओं के लाल उनकी गोदी से छीन लिये, नारियों को विधवा बना दिया और बच्चों को यतीम कर दिया। उन्होंने हंसते-खेलते बच्चों के चेहरे उदास बना दिये। जिन घरों से कुछ समय पहले खुशी के गीत सुनायी दे रहे थे, अब वहाँ रोने-चिल्लाने की आवाज़ें आने लगीं। उन्होंने बूढ़ों के सहारे छीन लिये। गोया लोगों की चीख-पुकार सुन कर भी उनके मन में दया का झंचक भी स्फुर्ण नहीं हुआ। इस वृत्ति से उनके मन में इन्सानियत मर गई। हाहाकार मचाकर भी वे अपनी जय-जयकार के नारे सुनकर खुश रहे। अपनी तीखी-तलवार से कइयों का गला काटने के बाद, अनेकों को मौत के घाट उतारने के पश्चात् और शहरों को मरघटों में परिवर्तित करने के बाद भी उनके मन में प्रायश्चित की धीमी-सी आवाज भी नहीं उठी। वे अपने को 'विजयी' मानने लगे और आशर्फियां देकर भी भाटों, चारणों और गीतकारों से अपनी वीर-गाथाएँ लिखवाने लगे।

अफसोस की बात तो यह है कि अविवेक से अन्धे हुए आम लोग भी ऐसे लोगों को 'वीर', 'शेर', 'साहसी', 'योद्धा', इत्यादि की उपाधियाँ देने लगे। शायद ही किसी ने सोचा हो कि दूसरों के चैन को छीनने वाले ये लोग वास्तव में वीर नहीं, 'अत्याचारी' थे। बच्चों को बिलबिलाते देखकर भी जिनके मन में जरा भी आह नहीं उठी, ये वो पत्थर दिल इन्सान थे जो वास्तव में इन्सानियत के माथे पर कलंक थे। ये नगरों को लूटने वाले बड़े लुटेरे और हजारों-लाखों लोगों को मारने वाले कातिल थे। लेकिन इतिहासकारों ने इतिहास में इनका इस रूप में वर्णन नहीं किया और प्रायः लेखकों और कवियों ने भी लोगों के सामने उनका सही रूप नहीं रखा बल्कि वे बहुत बड़े 'विजयी' अथवा 'शासक' के रूप में उनकी जीवन-कथा लिखते रहे। उदाहरण के रूप में उन्होंने सिकन्दर को 'सिकन्दर महान' (Alexender the Great) कहा जबकि वह और उस-जैसे दूसरे आक्रमणकारी ऐसे लोग थे जिन्होंने लड़ाई और युद्ध को बढ़ावा देकर संसार में संघर्ष को बढ़ाया, अशान्ति फैलाई और हँसते हुओं को रूलाया। हाँ, केवल महाराजा अशोक के विषय में हम पढ़ते और सुनते हैं कि कलिंग की लड़ाई में हजारों लोगों की मृत्यु होने के बाद उसके मन ने उसे कोसा और उसके भीतर की आवाज ने उसे भविष्य में ऐसा निकृष्ट कर्म करने से रोका और उसने अहिंसा का व्रत लिया।

खैर! हम वास्तव में बात कोई राजाओं-महाराजाओं की नहीं कर रहे थे बल्कि हम उन द्वारा हुए आक्रमणों के पीछे उनकी प्रवृत्ति की चर्चा कर रहे थे। जो राजा थे, साधन-सम्पन्न थे, प्रशासन कला में भी कुशल थे और उन्हें व्यवस्था करना भी आता था, उन्होंने इस प्रवृत्ति का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया, बड़ी सेना बना कर किया और एक बड़ी लोभ-पीड़ा के वश हो कर किया। परन्तु हम कहना ये चाहते थे कि तब यह प्रवृत्ति कम या अधिक मात्रा में सभी लोगों की होने लगी थी। दूसरों को भोला देखकर, उन्हें अपने वश करके, उन्हें अपनी ही स्वार्थ-सिद्धि में जोत देना अथवा स्वमान या शारीरिक शक्ति की दृष्टि से किसी को कमजोर पाकर उस पर कब्जा जमाना और उसे घोड़ा बना अपने मतलब रूपी गाड़ी में जोतना—ये प्रवृत्ति द्वापर युग में शुरू हो चुकी थी। तब दूसरों को दास बना कर मनुष्य अधिक खुश होने लगा था। दूसरों के द्वारा अपनी मलकियत बना कर स्वयं को मालिक कहलवाने में उसे ज्यादा मजा आता था। इतिहास में एक भी ऐसे व्यक्ति का दृष्टान्त नहीं मिलता जिसने दूसरों को राजा बनाया हो, उन्हें दासता से निकाल कर मालिक के पद पर बिठाया हो, उनको अपनी हुकूमत से छुड़ाकर उन्हें गले लगाया हो और अपने समान बनाया हो। क्या है कोई ऐसा उदाहरण कि जिसने हजारों-लाखों-रोते हुए लोगों के आँसू पोंछे हों, उनकी हृदय-वेदना मिटाई हो और उन्हें खुशहाल बनाकर वहाँ खुशी की लहर फैलाई हो? हुई है कोई ऐसी विभूति जिसने दुखियों की पुकार सुनी हो, उन्हें सुख की युक्ति सुझाई हो और निर्बलों को समर्थ सहारा दिया हो? ऐसा ज्वलन्त उदाहरण तो एक मात्र

शिवबाबा का ही है जिन्होंने ब्रह्मा बाबा के साकार माध्यम से नर और नारी को महान बनाया।

इस प्रवृत्ति से संसार में कुहराम

परन्तु हम ये कह रहे हैं कि मनुष्य की आक्रमण और प्रहार की प्रवृत्ति अथवा दूसरों पर हुकूमत करने की नीयत ने संसार में बहुत कोहराम मचाया और इतिहास को दुख की दास्तान में बदल कर रख दिया। मनुष्य की यह प्रवृत्ति द्वापर युग से लेकर अब तक बढ़ती ही चली आती है। यह राजा-रंक, साधु-संत, अध्यापक-छात्र, कार्य-अधिकारी और कर्मचारी, पति और पत्नी, नेता और जनता सब में किसी-न-किसी रूप में देखने में आती है। मनुष्य केवल दूसरों पर हुकूमत ही नहीं करना चाहता बल्कि इस उद्देश्य से वह दूसरों पर आक्रमण भी करता है, अपनी महिमा कराने के लिए वह दूसरों के व्यक्तित्व पर शब्द रूपी कुठार से उसे आघात भी पहुँचता है। वाणी को बाण बनाकर उसे घायल भी करता है, तिरछे और तीखे नेत्रों से घृणा के क्षेपकों से उस पर वार भी करता है, सामने या पीठ पीछे, उसके सावधान होने पर या सोये होने पर भी वह अपने विचारों के हथगोले उन पर फेंकता रहता है। वह दूसरों को उनके पद से धकेल कर स्वयं पद प्राप्त करना चाहता है। वह दिखावा मात्र स्नेह दिखाकर या ऊपरी सम्मान देकर, भाईचारे की दुहाई देकर भी स्वयं अधिकारी या शासक बनने के लिए घोषित-अघोषित युद्ध करने को तत्पर होता है। यही कारण है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी विश्व में शान्ति नहीं हुई और आज परिवारों में लोग तनाव से मुक्त जीवन व्यतीत नहीं कर सकते।

इस प्रवृत्ति का मार्गान्तिरीकरण और शुद्धिकरण

अब शिवबाबा ने इस प्रकृति का मार्गान्तिरीकरण करने के लिये समझाया है कि एक-दूसरे पर प्रहार अथवा आक्रमण न करके अब हमें मनोविकारों से युद्ध करने के लिये जयघोष करना है। हमें विजय किसी व्यक्ति पर नहीं, अपनी कर्मेन्द्रियों और विकारों पर प्राप्त करनी है। इन इन्द्रियों को ही हमें दास बनाना है और स्वयं इन्हीं का राजा, शासक या अधिकारी बनना है। अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगे रहने की बजाए प्रेम, सेवा और त्याग से दूसरों के भाग्य को जगाने में लगना है। भोले-भाले और निर्बल लोगों को भोलानाथ शिवबाबा से विश्वसनीय सहारा दिलाना है और मन में सदा यह ध्यान रखना है कि सुख का शासन शस्त्र के बल से प्राप्त नहीं होगा, महानता दूसरों को अधीन बनाने से प्राप्त नहीं होती बल्कि स्वयं के मनोविकारों और कर्मेन्द्रियों की गुलामी से मुक्त करने पर प्राप्त होती है। हमें यह भी याद रखना है कि वीर वह नहीं जो दूसरों का रक्तपात करे बल्कि जो माया को युद्ध में परास्त करता है, मन के नकारात्मक विचारों पर विजयी होता है, वही वीर अथवा महावीर है।

हमने पहले भी यह कहा है कि साधु-सन्तों, पति-पत्नी, अथवा द्वापर युग के व कलियुग के सभी मानवतनधारी आत्माओं में किसी-न-किसी को अपने वश में करने, उस पर रौब डालने अथवा स्वार्थपूर्ति के लिए हथियार बनवाने की दूषित प्रवृत्ति होती है और मान और शान प्राप्त करने के लिए वे कई ऐसी चालें चलते हैं जिससे वे कुटिलता और लौकिकता तथा नकारात्मक विचार और संघर्ष को अपने मन में स्थान देते हैं और अपनी मासूमियत और अपने भोलेपन तथा सरलता को गँवा बैठते हैं और समाज में प्रेम बढ़ाने की बजाए पाप को बढ़ाने के निमित्त बनते हैं। योगीजनों को इस कुरीति पर—चाहे वह गुप्त हो या प्रत्यक्ष

महान वही है जो औरों से इन्साफ करता है मन साफ रख कर चलता है। श्रेष्ठ वही है जो अपना क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रहार नहीं करता बल्कि सभी को प्रेम का उपहार देता है और प्रभु के गले का हार बनता है। इस विधि-विधान को सामने रखते हुए हमें सरलचित्त, नम्रचित्त, न्याययुक्त तथा योगी और सहयोगी बनना है और द्वापर युग तथा कलियुग की प्रहार वृत्ति तथा आत्मिक आक्रमण के स्थान पर सेवावृत्ति, सज्जनता-वृत्ति और निर्लोभ-वृत्ति को अपनाना है।

हो—पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। मनुष्य का स्वार्थ, मान और शान की इच्छा, पद की लोलुपता,

प्रतिष्ठा की प्यास, उसे दूसरों का शोषण करने, उन्हें पछाड़ कर स्वयं उनका स्थान लेने अथवा उन्हें धकेल कर स्वयं आगे बढ़ने आदि जैसे कर्मों की ओर प्रवृत्त करती है। मनुष्य अपने विवेक को खो बैठता है; वह ढीठ और निर्लज्ज बन जाता है। अगर बड़े उसे आगे के लिये सावधान करें तो उनका कहना भी बुरा मान जाता है। वह सोचता तो यह है कि वह युक्ति से बहुतों से काम निकाल लेता है परन्तु वास्तविकता यह होती है कि कुटिलता उसके कान काट जाती है।

वह माने तो यही बैठा होता है कि औरों को निमित्त बना कर मैं आगे बढ़ गया हूँ जबकि वास्तविकता तो यह होती है कि निमित्त बनने वाले तो अपनी सरलता और सेवाभाव के कारण आगे बढ़ जाते हैं पर वो स्वयं घाटे में रह जाता है। वास्तव में श्रेष्ठ वही है जो औरों को आगे बढ़ाता है, दूसरों की सहायता करता है, उन्हें अच्छे मार्ग में लगा कर भी स्वयं गुप्त रहता है। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये वह उन्हें हथियार नहीं बनाता बल्कि उनकी मुक्ति-जीवनमुक्ति के लिये स्वयं को ईश्वर के हाथ का यन्त्र बना लेता है।

महान वही है जो औरों से इन्साफ करता है मन साफ रख कर चलता है।

श्रेष्ठ वही है जो अपना क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रहार नहीं करता, बल्कि सभी को प्रेम का उपहार देता है और प्रभु के गले का हार बनता है। इस विधि-विधान को सामने रखते हुए हमें सरलचित्त, नम्रचित्त, न्याययुक्त तथा योगी और सहयोगी बनना है और द्वापर युग तथा कलियुग की प्रहार वृत्ति तथा आत्मिक आक्रमण के स्थान पर सेवावृत्ति, सज्जनता-वृत्ति और निर्लोभ-वृत्ति को अपनाना है।

— जगदीश

हे वसुन्धरा की परम विभूति

मधुबन-मानसरोवर के होली हंसों की टोली
कहती, गूंजे कानों में मां की मीठी बोली।।
निराकार शिव का ब्रह्मा से, पिता का प्यारा प्यार मिला,
पर मां की ममता में, इस गुलशन का है हर फूल खिला।
तुम वसुन्धरा की परम विभूति! सबको लगी भोली....

मन्दिर में दुन्दभी नाद करें और भक्ति सदा ही ध्यान धरें
जिनका हर पल गुणगान करें, अन्तर में गुणों की खान भरें
तुम वही लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और मां काली...
ओ तपोभूमि की तपस्विनी! तेरा तप-त्याग निराला था,
सुंन्दर सूरत-सीरत को साकार दिखाने वाला था।
जाने कब सद्गुण-सिन्धु बनी, तुम तो थी हमजोली....

क्या व्यक्त और अव्यक्त रूप में रही सदा आगे,
तव निर्देशन में नव सृष्टि के साज सकल जागे।
स्मृतियों में रह रह तुम खेल रहे आँख मिचौली.....

ब्र० कु० सतीश कुमार, मधुबन

तांडूर: ब्र. कु. जगदेवी जी लायनज़ क्लब के गवर्नर भ्राता जयरामपमन्री जी को ईश्वरीय सन्देश देने के पश्चात ईश्वरीय सौगात देते हुए।

क्रोध से विवेक नष्ट होता है

जहाँ इस विश्व में अनेक करोड़पति नज़र आते हैं, वहीं क्रोधपतियों की भी कोई कमी नहीं है। बल्कि यदि छानबीन की जाए तो क्रोधपति बहुत ज्यादा मिलेंगे। अब वे क्रोध के पति (मालिक) हैं या क्रोध उनका पति है, यह तो वे स्वयं ही जानें। परन्तु यह हर कोई जानता है कि क्रोध है बुरा। जैसे करोड़ों की सम्पति प्रायः मनुष्य के विवेक को मंद कर सकती है, वैसे ही क्रोध की अग्नि में भी विवेक जल कर नष्ट हो जाता है। तब ही तो धन की देवी, लक्ष्मी का वाहन उल्लू दिखाया है। आज के जमाने में लक्ष्मी जिस पर सवार होती है, उसकी बुद्धि प्रायः उल्लू सी बन जाती है। नहीं तो विष्णु का वाहन गरुड़ व उसकी धर्मपत्नी का वाहन भला उल्लू क्यों होता और है भी ठीक, या तो किसी के पास धन का ही सुख होगा या फिर विवेक का आनन्द ही होगा। दोनों के मालिक तो वर्तमान समय में मुश्किल से ही मिलते हैं।

तो क्रोध बहुत बुरा है। यह भी जिस पर सवारी करता है उसे भी उल्लू जैसा मन्दमति बना देता है। यद्यपि आध्यात्मवादी मानते हैं कि आत्मा को अग्नि नहीं जला सकती परन्तु काम क्रोध की अग्नि में आत्मा भी जलकर अपने तेज को नष्ट कर देती है। यद्यपि सभी को ज्ञात है तो भी क्रोध को चाहते हुए भी, मनुष्य नहीं छोड़ पाते। यहाँ हम ऐसे पुरुषार्थियों की मदद करेंगे।

क्रोध से हानियां

प्रसिद्ध मान्यता है कि "क्रोध का आरम्भ मूढ़ता से व अन्त पश्चाताप से होता है।" गीता के भगवान ने भी कहा है, "क्रोध से ज्ञानियों का ज्ञान नष्ट हो जाता है।" अर्थात् क्रोध का प्रथम प्रहार हमारी सबसे मूल्यवान शक्ति 'बुद्धि' पर ही होता है। इससे बुद्धि विचलित भी हो जाती है, उसकी दिव्यता धूमिल हो जाती है, वह अपनी शीतलता को खोकर बेचैनी का अनुभव करने लगती है। और जब क्रोध शान्त होता है तो प्रत्येक प्राणी पश्चाताप के आँसू अवश्य बहाता है। वह सोचता है आखिर भी उसका परिणाम क्या?

क्रोध के द्वार से आत्मा की शक्तियाँ बाहर बह जाती हैं। एक योगी के लिए क्रोध सबसे अधिक घातक है। चाहे कोई कितना भी बड़ा तपस्वी हो, यदि वह क्रोधी है तो वह योग के परम सुखों का अधिकारी कदापि नहीं बन सकता। उसे तो लोग दुर्वासा ऋषि ही कहेंगे। क्योंकि योग-अभ्यास द्वारा वह

ब्र० कु० सूर्य, माउण्ट आबू

जितनी भी शक्तियाँ अर्जित करता है, उतनी ही क्रोध द्वारा नष्ट कर देता है। ऐसा साधक साधना-पथ पर कभी भी सफल नहीं होता और न ही उसे कभी मंजिल ही मिलती। फलस्वरूप हमेशा ही निराशा उसके द्वार खटखटायेगी।

क्रोध से कार्यक्षमता भी नष्ट होती है। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार भी क्रोध का हमारी ग्रन्थियों पर, हमारे रक्त पर, हमारी नसों पर व हमारी पाचन शक्ति पर अत्यन्त बुरा असर पड़ता है। मनोविज्ञान के अनुसार भी एक घण्टे तक किया गया क्रोध अनेक घण्टों की कार्यशक्ति को नष्ट कर देता है। क्रोधी के हाथ काँपते हैं, वह स्थिर भी नहीं रह पाता, उसका स्वयं से नियन्त्रण भी हट जाता है, इसलिए उसकी कार्य-शक्ति नष्ट हो जाती है।

क्रोध आन्तरिक कड़वाहट की व कमजोर पक्ष की निशानी है। यद्यपि क्रोधी व्यक्ति बड़ा ही शक्तिशाली दिखता है, परन्तु वास्तव में उसका मन बहुत ही कमज़ोर होता है। यदि वह शक्तिशाली होता तो उसका स्वयं पर नियन्त्रण होता। क्रोधी व्यक्ति चिड़चिड़ा होने के कारण शरीर से भी कमजोर होता है। हम देख सकते हैं, शक्तिशाली व्यक्ति सदा ही धैर्यवान व गम्भीर होता है।

कहा गया है, "क्रोध पानी के मटके भी सुखा देता है।" जहाँ क्रोध की गर्म लू चलती हो, वहाँ शीतल जल का अस्तित्व कब तक रहेगा। एक घर या दफ्तर में तनाव बनाये रखने के लिए एक व्यक्ति ही काफी है। क्रोध से आपसी सम्बन्ध बिगड़ते हैं, सम्बन्धों में तनाव बढ़ता है, भाई-भाई दुश्मन बन जाते हैं व मित्र वैरी बन जाते हैं। अतः क्रोध तो एक विष है, विनाश की अग्नि है, क्रोध आन्तिरक असन्तुष्टता का प्रतीक है। यह तो जीवन को ज़हरीला बना देता है।

क्रोधी व्यक्ति 'सुनाने की शक्ति' तो रखता है, परन्तु कुछ भी सुनने की शक्ति व धैर्यता उसमें नहीं होती। और यही कमजोरी जीवन में उसकी हार का कारण बनती है। क्योंकि सुनना तो उसे भी पड़ेगा ही और ऐसे समय उस कमजोर आत्मा की अशान्ति की सीमा नहीं रहेगी। क्रोधी व्यक्ति से यदि कोई क्रोध से बात करे तो वे प्रायः कहते हैं, भई, मुझसे प्यार से तो बात करो। वे कभी नहीं सोचते कि मुझे भी दूसरों से प्यार से ही बात करनी चाहिए। गोया वे सदा ही प्यार के भिखारी बने रहते हैं, दाता नहीं।

क्रोधी व्यक्ति दूसरों का सहयोग व श्रेष्ठ भावनाएँ खो देता है। कोई भी उसे सच्चे मन

से सम्मान नहीं देता। वास्तव में क्रोध काम बिगाड़ता है। प्रशासन का महान शत्रु है- यह आवेश।

अन्त में हम यह कहें कि क्रोधी व्यक्ति को जीवन में कभी भी चैन नहीं मिलता। वह स्वयं भी जलता है व दूसरों को भी जलाता है। वह अपने घर में भी आग लगाता है और दूसरों के घर में भी। जहाँ भी वह जाएगा, लोग उससे डरेंगे-यही उसकी भारी हार है। क्रोध-वश मनुष्य हिंसा भी करता है, वह अनेकों के जीवन ले लेता है, वह अनेकों को दुखी करता है, मानो उनके जीवन का सुख ले लेता है, तब भला उसके जीवन में सुख कहाँ से आयेगा।

क्रोध—काम का ही अँश है-

जो जितना 'काम महाशत्रु' का ग्रास होगा, वह उतना ही क्रोध के वश भी होगा। क्रोध-अग्नि, काम-अग्नि का ही प्रज्जवलित अँश है। एक योगी ज्यों ज्यों काम पर सम्पूर्ण रूप से विजय पाता चलता है, उसकी क्रोध-अग्नि भी शान्त होती जाती है। मन व सर्व कर्मेंद्रियाँ भी शीतल होने लगती हैं। तो काम भी आत्मा का महा शत्रु है और क्रोध भी। ये दोनों ही रावण के प्रधान सेनापति हैं। ईश्वरीय ज्ञान के दिव्य शस्त्रों से हमें इनका संहार करना है। काम के आवेग को दबा देने से मनुष्य के अन्दर आवेश उत्पन्न होता है। अर्थात् आवेग आवेश में बदल कर फूट पड़ता है। इस प्रकार हमने कितनी क्रोध पर विजय पाई है, उससे अपनी पवित्रता की स्थिति को भी जान सकते हैं।

क्रोध क्यों आता है?

क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिए क्रोध के कारणों पर ज़रा ध्यान दो। क्रोध अकारण ही तो आता नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को क्रोध किसी विशेष परिस्थिति में ही आता है। पहले हम उन कारणों को जान लें, फिर उनका निवारण कर लें।

क्रोध तब आता है-

- जब कोई हमारी बात नहीं मानता या बार बार कहने पर भी ठीक काम नहीं करता।
- जब कोई हमारी निन्दा करता है।
- जब कोई हमारा अपमान करता है अर्थात् हमारे अहं को ठेस पहुँचाता है अर्थात् अहंकार वश भी मनुष्य क्रोधित होता है।
- जब दूसरे हमारी इच्छाओं के विरुद्ध काम करते हैं।
- जब कोई काम से थककर घर लौटे तो भोजन-पानी ठीक न मिले।
- जब बच्चे ठीक से नहीं रहते, तंग करें या ज्यादा चंचलता करें।
- जब हमारे मन में किसी के लिए ईर्ष्या, घृणा, वैर या बदले की भावना होती है।
- जब कोई आकर बिना कारण या कारण-वश हम पर क्रोध करता है।
- जब कोई काम बिगाड़ देता है या हमारा कोई प्रिय गलत काम करता है।
- जब कोई हमारी नींद डिस्टर्ब करता है।
- जब हमें ज्यादा काम होता है और कोई बीच में आकर विघ्न डालता है या हस्तक्षेप करता है।
- जब कोई हमारे सामने झूठ बोलता है।
- जब कोई हमें बार बार परेशान करता है या हमारी सज्जनता का अनुचित लाभ उठाता है।
- जब कोई लम्बे समय तक बीमार रहते हैं और कोई उनकी ठीक तरह सेवा नहीं करता।
- जब कोई हमसे अनुचित बहस करता है।

उपयुर्क्त १५ विभिन्न परिस्थितियां हमने गिनाई, जिनमें किसी भी व्यक्ति को क्रोध आना सम्भव है। तो पहले हम यह देख लें कि इनमें से हमें किन परिस्थितियों में क्रोध आता है।

क्रोध पर विजय-

क्रोध करने से पूर्व मनुष्य को एक संकल्प आता है। जरा ध्यान दें, वह संकल्प है "क्यों"। बस यह 'क्यों' ही क्रोध का जन्म दाता है। हम अपने इस संकल्प को पकड़ लें और उसका निवारण ज्ञान-युक्त संकल्प से कर दें।

क्रोध पर विजय होगी "धैर्यता" से। यदि धैर्यता नहीं है तो हम इस "क्यों" का निवारण नहीं कर सकेंगे। हम ज़रा ५ सेकंड दूसरे की बात सुनने के लिए ठहरें, इससे हमारा धैर्यता का गुण बढ़ेगा। तुरन्त उत्तर देने में हम अपनी बहादुरी न समझें। ऐसा उतावलापन हमेशा ही हानिकारक होता है।

भगवान के बच्चे उसी की तरह क्षमाशील बन कर दूसरों की गल्तियों को क्षमा करते चलें। क्षमा करना ही सबसे उत्तम सज़ा है। यही महानता है। तो क्षमा करने से हम इस अग्नि से मुक्त रहेंगे।

हम दूसरों की स्थिति व परिस्थिति का भी ध्यान रखें कि वह व्यक्ति न जाने किस समस्या में हो, न जाने उसके साथ क्या बीती हो, हम भी यदि उस पर क्रोध करेंगे तो उस पर क्या बीतेगी। वह भी तो आखिर एक मनुष्य है, उसे भी तो जीवन में प्रेम व शान्ति चाहिए।

दूसरे हमारी बात नहीं सुनते, इसलिए हमें क्रोध आता है। हम सोचें कि हम भगवान की कितनी सुनते हैं। यदि भगवान हम पर क्रोध करने लगे तो...

दूसरे बार बार गलती करते हैं। हमारे क्रोध करने से उनकी गलती बढ़ सकती है। हो सकता है उनकी बुद्धि हमारी बात को ग्रहण न करती हो। प्रेम से हम दूसरों की ग्रहण-शक्ति को बढ़ा सकते हैं।

कोई हमारा अपमान करता है। हम सोचें कि इसके जिम्मेदार तो हम स्वयं हैं। हम स्वयं ही स्वमान में न रहकर अपना अपमान कर रहे हैं, ईश्वरीय अवज्ञा कर ईश्वर का अपमान कर रहे हैं, हम स्वमान में रहें, दूसरे स्वतः ही हमारा सम्मान करेंगे।

जब कोई हम पर क्रोध करे तो हम यह सोचकर रहम की भावना अपने मन में भरें कि यह बेचारा अब परवश है। देखो शान्त स्वरूप आत्मा जल रही है, शान्ति के सागर का बच्चा बेचैन है। दूसरों को जलता देखकर खुद भी जलने का दुस्साहस न करें।

इसके अतिरिक्त, जब कोई हमसे टकराये तो हम सामना न करें, उनके पास से हट जाएँ। इस प्रकार जो मनुष्य झुकना जानता है, वह इस महापाप से मुक्त रहता है। हमें याद रहे कि झुकना महानता है। झुकना कमजोरी नहीं है। जो भरपूर है वही झुक सकता है।

परन्तु यदि हम क्रोधी की एक बात का भी उत्तर देंगे तो उसके जीवाणु अवश्य ही हममें प्रवेश कर लेंगे। इसलिए अच्छे पुरुषार्थी को चाहिए कि अपने मुख-कमल की पंखड़ियों को बन्द ही रखे।

इस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में धैर्यता, नम्रता व क्षमाशीलता के द्वारा क्रोध को जीतने का दृढ़ संकल्प करें। अग्नि ठन्डे जल से ही बुझाई जा सकती है। तो यदि हम दृढ़ता से ध्यान देंगे तो अवश्य ही इस अग्नि को शीतल कर देंगे।

स्वमान से चित्त शीतल

विचार करो कि यदि संसार से क्रोध का साम्राज्य नष्ट करने वाले स्वयं भी क्रोध अग्नि में जलेंगे तो जग में चन्दा सी शीतलता कौन बिखेरेगा। हमें तो धरा पर सुख-शान्ति का साम्राज्य लाना है, हम तो विश्व के आधार स्तम्भ हैं, महान आत्माएँ हैं, पुण्य आत्माएँ हैं, हम भला माया के अधीन कैसे हो सकते हैं।

जब भी क्रोध ज्वाला उठना चाहे तो अपने समक्ष एक दृश्य उपस्थित कर लें कि क्रोध की चिता जल रही है और उसमें मैं जल कर नष्ट हो रहा हूँ और मेरी इस अग्नि में समस्त विश्व जलने लगा है। बस यह आँधी रुक जायेगी।

हम विचार करें, हम भक्तों के इष्ट हैं। यदि भक्त हमें क्रोध करता देख लें। जब हम क्रोध कर रहे हैं तब ही हमारा साक्षात्कार हो रहा हो तो कैसा लगेगा। तो हम अपनी महानता को स्वीकार करके उसमें स्थित हो जाएं तो हमारे मन से दूसरों के प्रति बुरी भावनाएँ भी दूर हो जाएँगी।

सरलता धारण करें, साक्षी-भाव अपनायें

सरलता जीवन को सुखद बनाती है। हम यदि यही सोचेंगे कि जैसा मैं चाहूँ वैसा ही सब करें तो यह हमारी बुद्धिमत्ता नहीं होगी। सबकी बुद्धि व शक्ति अलग अलग है। नाटक में सभी का समान पार्ट नहीं हो सकता। विश्व नाटक की सुन्दरता भी विविधता में ही है। अतः इस विविधता को साक्षी होकर देखते हुए हम इसका आनन्द लें और जो व्यक्ति जैसा है उससे उसी तरह का काम लें।

हम प्रायः यह सोचते हैं कि दूसरे बदलें, यही हमारी परेशानी का कारण है। "मैं बदलूं"-यह सोचने वाला ही धैर्य-चित्त व सरलचित्त होता है। परन्तु कैसी विडम्बना है कि प्रत्येक दूसरों के लिए ज्यादा सोचता है जहां कि वह कुछ भी नहीं कर सकता। जो वह कर सकता है, वह नहीं सोचता। तो हम स्वयं को बदलें, दूसरे बदलें या न बदलें। हम बीमार हैं तो दवाई हमें ही खानी पड़ेगी।

राजयोग क्रोध-अग्नि को शान्त करता है, हमारे विचारों को नई दिशा देता है। "मैं आत्मा शान्त स्वरूप हूँ"-यह अभ्यास चित्त को शान्त करता है। जो आत्मा अशरीरी होने का अभ्यास करेगी, उसमें आवेश उत्पन्न नहीं होगा। साथ ही साथ उसका यह स्वमान भी स्मृति पटल पर उभरता रहेगा कि मैं

क्रोध करने वाला अपनी ही क्रोधाग्नि में जलता रहता है। गलती दूसरे की और जलना स्वयं में-यह कहाँ की बुद्धिमानी है?

प्यार के सागर व शान्ति के सागर का बच्चा हूँ, मुझे क्रोध कहाँ से आया...

अपने भविष्य स्वरूप की स्मृति कि 'मैं तो विष्णु समान बनने वाला हूँ', क्रोधाग्नि का शमन करेगी। क्रोध-वश होने पर हम यह दृश्य सामने लायें कि हमारा दिव्य स्वरूप हमें देख मुस्करा रहा है तो हमें लज्जा आजायेगी। तो हमें ऐसी स्थिति बनानी है कि हमें जरा सी उत्तेजना भी न हो, चिड़चिड़ापन भी न हो-यही हमारी साधना की सफलता है।

तो हे विश्व के मार्ग प्रदर्शक महान योगी आत्माओं, दृढ़ संकल्प से अपने चित्त को इतना शीतल कर दो कि तुमसे शान्ति के सागर का दर्शन हो। भले ही ऊपर कितनी भी परिस्थितियों की लहरें हों पर अन्तर्मन शान्त व गम्भीर हो। तुम तो जग के सहारे हो, तुम पर भगवान को भी नाज है। तुम्हें शीतल दृष्टि से सबके अन्दर जलती हुई अग्नि को बुझाना है, तुम क्रोध-वश कैसे हो सकते हो...तो आओ, हम आज से अपना इतना अहिंसात्मक रूप बना लें कि कभी भी हमें क्रोध न आवे। तब ही हमारा संगठन एकता के मजबूत सूत्र में बन्धकर विश्व को चुनौती दे सकेगा। ¤

भीष्म प्रतिज्ञा

भारत की धरती में काफी मानवरत्न पैदा हुए हैं। उनमें से उल्लेखनीय नाम है महारथी भीष्म का। अपने पिता के दुनयावी सुखों के खातिर आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण करने की उनकी प्रतिज्ञा आज भी लोक हृदय में आदर पाती है। उस प्रतिज्ञा में इतनी शक्ति थी कि प्रतिज्ञा के साथ भीष्म का नाम भी जुड़ा हुआ है। प्रतिज्ञा ने भीष्म का विशेषण धारण कर लिया।

प्रतिज्ञा में कर्त्तव्यपालन करने का ठोस निर्णय है। उसमें वचनपालन, फर्जपालन, शपथ, सौगंध आदि आ जाते हैं। मानव जीवन में कभी कभी ऐसी घड़ियां आ जाती हैं जब कि प्रतिज्ञा की जाती है। उसमें समय, वातावरण, परिस्थिति आदि महत्व प्रदान कर सकते हैं। हृदय में भावना की बाढ़ आती है। भावावेश पैदा होता है। समर्पण की भावना उछलने लगती है। तब मानव अपने जोश को, अपने मनोभावों को प्रतिज्ञा के रूप में अभिव्यक्त करता है। लेकिन प्रतिज्ञा लेना जितना आसान है उतना उसे निभाना मुश्किल है। उसको सार्थक करने के लिए जागृति चाहिए। प्रतिज्ञा को साकार रूप देने का लगातार ठोस पुरुषार्थ चाहिए। अपना सब कुछ न्यौछावर करने की, स्वापर्ण की तैयारी होनी चाहिए। प्रतिज्ञा करने के बाद उसका नशा उतर न जाये, जोश में कमी न आजाए या हताशा का अनुभव न हो। ऐसा होने से प्रतिज्ञा की 'आत्मा' मर जाती है। प्रतिज्ञा पंगु बन जाती है। उपहास का रूप धारण कर लेती है। इसलिए अपनी शक्तियों, योग्यताएँ और आपनी प्रतिज्ञा पालन की तैयारी का अनुमान लगा करके यदि प्रतिज्ञा की जाती है, तो उसे पूर्ण कर सकते हैं।

प्रतिज्ञा पल पल में नहीं की जाती। वह तो किसी अवसर पर, विशेष समय पर ही होती है। यदि प्रतिज्ञा की तो उसे पूरा करके ही छोड़ना चाहिए। मेवाड़ की आजादी के लिए राणा प्रताप ने जो प्रतिज्ञा की वह प्रसिद्ध है। रघुकुल की प्रतिज्ञा का गायन है। देश की आजादी दिलाने के लिए समर्थ सेवकों, राजनेताओं के प्रतिज्ञा बद्ध कार्यक्रमों के द्वारा देश को आजादी मिली। जीवन में भक्तिभावना या योगी जीवन के लिए, धर्माचरण के लिए, नीति या चरित्र की रक्षा के लिए, राष्ट्र की सुरक्षा के लिए,

ब्र० कु० प्रोफेसर कालिदास,
अहमदाबाद

नारी, असहायों की रक्षा के लिए प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं। इस देश के विभिन्न वर्गों के महारथियों ने ऐसी प्रतिज्ञाएँ की हैं और उसका पालन किया है। जो आज इतिहास में शिलालेख की तरह प्रसिद्ध हैं।

समय बदलने से प्रतिज्ञा का स्वरूप भी बदल गया। उसका मूल्य आज कम होने लगा है। मानव का चारित्रिक, नैतिक बल कम हुआ, तो प्रतिज्ञा का मूल्य भी कम हुआ। आजकल विभिन्न त्यौहारों के दिनों में प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं। राष्ट्रीय कार्यक्रमों में, धार्मिक, आध्यात्मिक कार्यक्रमों में प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं। चुनाव में विजय के बाद विधानसभा, लोकसभा आदि के सदस्यगण, मंत्रीगण आदि शपथ लेते हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि ये सब रसम निभाने का कार्य हो रहा है। उसमें गंभीरता, महानता कहाँ हैं? उसके लिए प्रतिपल की जागृति कहाँ हैं? जैसे आजकल कानून से छुटकारा पाने के रास्ते मिलते हैं ऐसे ही प्रतिज्ञा, वचनों आदि से छुटकारा पाने के लिए प्रतिज्ञा के अर्थ को बदल देते हैं, उसकी भावना को बदल देते हैं।

प्रतिज्ञा करने वालों को सहन करने की, प्रतिज्ञा की भावना को स्थित रखने का प्रयास रखना चाहिए। समर्थ प्रतिज्ञा इन्सान को महानता के शिखर पर बिठाती है। प्रतिज्ञा इन्सान को पुरुषार्थ कराती है। कर्तव्यपालन, फर्जपालन की गुह्यता समझाती है। उसमें आंतरिक बल पैदा होता है। प्रतिज्ञा पुरुषार्थ को नया रूप, रंग देती है। सर्व का सहयोग लेने की भावना जगाती है। प्रतिज्ञा शक्तिशाली बनाती है। हमें गायन और पूजन योग्य बनाती है।

आज का मानव अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है। भ्रष्टाचार की लीलाएँ व्यापक रूप धारण कर रही हैं। तब राष्ट्र का युवावर्ग प्रतिज्ञाबद्ध बने, तो भ्रष्टाचार निवारण के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर सकें। उस के लिए लालच, प्रलोभनों से दूर रहने की तैयारी होनी चाहिए। कुछ विशिष्ट प्राप्तियाँ विशिष्ट त्याग मांगती हैं। त्याग के बिना भाग्य का निर्माण नहीं होता। भीष्म को भी विचलित करने की परिस्थितियाँ आईं, पर उन्होंने सर्व प्रलोभनों को ठोकर मारकर प्रतिज्ञा को निभाया। उसी तरह समाज के नवनिर्माण के लिए विवेकानंद, पिताश्री प्रजापिता ब्रह्मा की तरह प्रतिज्ञाबद्ध युवकों, युवतियों की आवश्यकता है। जो सर्व आकर्षणों से, प्रलोभनों से मुक्त रहकर अपने ध्येय के, प्रतिज्ञा के वफादार रहें।

मानव बाह्य रूप से जितना समृद्ध दिखाई देता है। उतना आंतरिक रूप से खोखला है। आजकल दंभ, बाह्याचार और

आडंबर की मात्रा बढ़ गई है। सच्ची मानवता नष्ट हो गई है। समाज के विभिन्न वर्गों में विषमता नजर आती है। प्रेम, संवादिता, एकता और भ्रातृत्व की भावना का ह्रास हुआ है। कभी कभी धर्म के नाम पर आग भभक उठती है जो अनेकों को भस्म कर देती है। धर्म या किसी जाति को राजनीति की गंदी चालों का शिकार नहीं बनानाचाहिए। तब ही कौमी एकता के लिए कराई जानेवाली प्रतिज्ञाएँ फलदायी बन सकेंगी।

प्रतिज्ञाएँ व्यक्ति के विकास का समयबद्ध कार्य-क्रम है। उसमें कुछ ठोस, यथार्थ, श्रेष्ठ कार्य की भावना का उदय होना चाहिए। हिंसा, आतंकवाद फैलाने के लिए ली जाने वाली प्रतिज्ञाएँ निन्दनीय हैं। उसकी कलंक-कथाएँ आज भी इतिहास के पन्नों में लिखी हुई हैं।

प्रतिज्ञा में संकुचित भावना न हो। स्वार्थपूर्ण कार्यों के लिए प्रतिज्ञा न लें। प्रतिज्ञा ऐसी हो जिसमें से खुशबु निकले, मानव देव बने, कांटे फूल बनें और पतित, पावन बनें। भारतभूमि को विकारों, व्यसनों की गुलामी से मुक्त कराने के लिए त्याग, तपस्या और पवित्रता के बंधन से बंधायमान, प्रतिज्ञाबद्ध आत्माओं की आज आवश्यकता है।

¤

वर्षा सुख शांति की

पुनर्जन्म आत्मा लेती है। शरीर यहीं पड़ा रह जाता है। आत्मा के लिए हम कुछ नहीं करते। जो कुछ हम करते हैं वह केवल शरीर के लिए और इसी लोक के लिए। इसलिए हमें सुख नहीं मिलता, शांति नहीं मिलती और हमारे जीवन में पवित्रता नहीं आती।

आत्मा के विषय में सब कुछ करने वाली एक संस्था विश्व में है, नाम है प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय । आत्मा के जन्मों की कहानी, आत्माओं का स्वभाव, आत्माओं का आकार, आत्मा के पिता इत्यादि की सम्पूर्ण जानकारी यह संस्था देती है। यह संस्था भक्ति नहीं सिखाती। आत्मा की सद्गति करने वाले परमपिता इस संस्था के संस्थापक एवं संचालक हैं। यहाँ पर केवल आत्मा और परमात्मा से सम्बंधित ज्ञान ही दिया जाता है।

जीवन निर्वाह करते हुए तथा पारिवारिक एवं सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है ताकि जीवन में संतोष, दया, करुणा सहनशीलता धैर्यता, मित्रता इत्यादि दिव्य गुणों का प्रसार हो सके। बिना आत्मिक दृष्टि रखे दिव्य गुणों का प्रादुभार्व नहीं होगा। आज सभी के जीवन में दिव्य गुणों का अभाव इसलिए है क्योंकि वे न तो आत्मा को मानते हैं और न उसके द्वारा धारण करने के सिद्धान्त को।

मनुष्य शरीर तो नहीं है। मनुष्य आत्मा है। शरीर तो आत्मा बार बार बदलती है लेकिन आत्मा तो रहती अविनाशी है। आत्मा जितनी सुन्दर बनती उतना जीवन में सुगंध फैलती है। आत्मा जितनी कुरूप होती है वह उतना ही जीवन को नर्कबना देती है। आज सभी का जीवन नर्कतुल्य बन चुका है। हजार प्रयत्न हो गए और हो रहें है तथा शायद होते भी रहेंगे फिर भी मानव जीवन में सुख शांति पवित्रता का नामोनिशान नहीं दिखाई देता।

शरीर को देखना, शरीर से संबध रखना, शरीर के लिए ही सब कुछ करना ही हमारे दुःख अशांति और अपवित्रता का कारण है। यह बंद हो जावे तो सुख शांति और पवित्रता की वर्षा होने लगे।

ब्र० कु० आर. एल. श्रीवास्तव
रायपुर

रायपुर: 'प्रशासन में आध्यात्म की भूमिका' विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए विशेष शस्त्र बल भिलाई के उप महानिरीक्षक भ्राता विनोदकुमार जी।

और आप क्या देंगे?

महाभारत का एक अनूठा प्रसंग है। अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा "भगवान, मैं ही आपका सबसे बड़ा सेवक, भक्त और दानी हूँ।" श्री कृष्ण को आभास हो गया कि अर्जुन को इन गुणों का अंहकार हो गया है। यह प्रसंग उस समय का है जब महाभारत का अन्तिम दौर था। कौरव सेना धराशायी हो गई थी। युद्ध भूमि में कुछ योद्धा अन्तिम सांस लेने के लिए छटपटा रहे थे। श्री कृष्ण और अर्जुन ने साधु का वेश बनाया। घायल अवस्था में पड़े कर्ण के पास गए और उससे कहा-"हे कर्ण! हम तुम्हारे पास कुछ दान लेने के लिए आए हैं।" कर्ण ने कहा "महाराज, मैं तो इस समय आपको कुछ नहीं दे सकता। मैं तो यहाँ युद्ध भूमि में अन्तिम सांस ले रहा हूँ।" "अच्छा बच्चा, क्या साधु तुम्हारे द्वार से खाली जाएगा।"

कर्ण ने कुछ विचार कर कहा-"महाराज मेरे पास एक सोने का दान्त है, मैं उसे तोड़ कर आपको समर्पित करता हूँ।" जब दांत तोड़ कर साधु की तरफ बढ़ाया तो वह रक्त-रंजित था जिसे देखकर साधु ने कहा-"छिःछिः हम ऐसा दान नहीं लेते। साधु किसी का खून नहीं करता"। दानवीर कर्ण ने अपना आखिकी तीर छोड़ा और वह बाण दनदनाता हुआ मेघाछादित आसमान को चीरता चला गया। पानी की धार बह निकली। दान्त को धो दिया गया और साधु ने उसे स्वीकार कर लिया। अर्जुन का अहकार दूर हो गया और श्री कृष्ण से क्षमा माँगी। इस प्रसंग से हमें अपने कई गुणों की कमी को दूर करने की प्रेरणा मिलती है। विनम्रता, दानशीलता और अहंकार की स्थिति को यह प्रसंग स्पष्ट करता है। अर्जुन को अपने बड़प्पन का अहंकार था। किन्तु कर्ण के आचरण ने उसे सही मार्ग दिखाया।

दूसरा प्रसंग पौराणिक कथा से है। शंकर और पार्वती साधु का वेश धारण कर एक लोटा दूध मांगने निकले। एक बहुत बड़े डेरी वाले के पास गए जिसकी सैंकड़ों की तादाद में भैंसें थीं। उसने दूध मांगने पर टका सा जवाब दिया "अरे मोट्टे, जा तेरे जैसे निठल्ले को एक लोटा दूध देने लगा तो मेरी डेरी तो चल ली।"

साधु ने आशीर्वाद दिया कि बाबा तुझे और ज्यादा भैंसों का मालिक बनाए। इसके पश्चात् शंकर एक साधु की कुटिया में गए और कहा "साधु महाराज एक लोटा दूध का सवाल है।" भगवान की याद में तल्लीन

ब्र० कु० मुरारीलाल त्यागी,
त्रिनगर, दिल्ली

साधु उठा और ताजा दूध निकाल कर प्रेमपूर्वक सारा दूध साधू को दे दिया। शंकर भोले ने एक कदम आगे बढ़ते हुए कहा-"बाबा करे तेरी एक गाय मर जाए।"

पार्वती ने पूछा " महाराज आप का यह कैसा वरदान और अभिशाप है।" हे पार्वती, उस डेरी वाले को तो बाबा की याद आती ही नहीं और कभी-कभी कुछ क्षण मिलते भी होंगे तो अब उसे बाबा का नाम लेने का अवसर ही नहीं मिलेगा। और साधु जब बाबा की याद में बैठता है तो उसे बीच-बीच में गाए के दूध, चारे या गाय के बच्चे की याद आती है। जब गाय नहीं रहेगी तो वह निरन्तर याद में मस्त रहेगा। इसे कहते हैं, " न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।"

इधर कविवर रहीम का एक प्रसंग आता है। वह भी बहुत दानी थे। लेकिन जब अपना ऊँचा हाथ करके दान देते थे तो आँखें नीची कर लेते थे। एक बार उनके समकालीन सन्त तुलसीदास ने प्रश्न किया:-

ज्यों-ज्यों कर ऊँचा करो त्यों-त्यों नीचे नैयन। सीखे कहां नवाबजू ऐसी देनी देन

इस पर रहीम ने स्पष्ट किया कि **"देनहार कौऊ और है भेजन सो दिन रैन। लोग भरम मौ पे धरे याते नीचे नयन।"**

यानि दाता तो सिर्फ एक ही है। हम भक्ति मार्ग में कहते रहे यहाँ तो मानते ही हैं कि सब बाप का है फिर उसकी वस्तु पर अपना अधिकार क्यों?

उपरोक्त तीनों प्रसंग ऐसे हैं जो गुणों का दान भी करते हैं। अवगुणों को छोड़ने की ओर प्रेरित भी करते हैं और अपनी कमियों को छोड़ने या दान करने की प्रेरणा भी मिलती है।

परमपिता परमात्मा ने पृथ्वी पर अवतरण के बाद सबसे पहले क्या मांगा? यानि देखिए जो सर्वशक्तिमान है जो दाता है उसने भी कुछ मांगा अपने बच्चों से!

बाबा ने कहा तुम अपने पाँच खोटे सिक्के मुझे दे दो। तुम्हारे अन्दर जो पांच भूत हैं वह मुझे दे दो। यानि बाबा तो दाता है और मांगा भी तो क्या? वही जो बच्चों को ढाई हजार वर्ष से सता रहे थे। कष्ट दे रहे थे, पाँच भूत, पाँच खोटे सिक्के यानि काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार।

हमने जितना जितना दान किया या भूतों को भगाया उतना हम सुखी होते चले गए। इसी प्रकार बाबा कहते हैं तुम भी अपने भाई बहनों से इस अशान्ति के मूल कारण का दान मांगो और बदले में गुण दान करो तभी महादानी कहलाओगे। संगम पर ही दान की सही परिभाषा का हमें पता चलता है। अन्यथा धनदान, अन्नदान, वस्त्रदान से आगे हम बढ़े ही नहीं थे। अब आप ही सोचिए आप अब संसार को क्या देंगे?

¤

माया का पत्र शिवबाबा के नाम

श्री श्री श्री पांच सौ करोड़ आत्माओं के पिता शिव परमात्मा जी, माया का आपको सत्-सत् प्रणाम।

बड़े दुःख के साथ आज आप को अपने विदाई पत्र द्वारा सूचित कर रही हूँ, कि मैं आधाकल्प के लिए आप के बच्चों का साथ छोड़ रही हूँ। आधाकल्प आपके बच्चों के साथ रहने से मुझे उनसे और उन्हें मुझसे बहुत लगाव हो गया है। परन्तु आपने परमधाम से आकर हम दोनों के स्नेह में दरार पैदा कर दी और मुझे उनसे दूर कर दिया। मैं द्वापर से उनको भुलावे में डाल कर मित्रता का नाटक करके उन पर शासन कर रही थी। आपने आकर उन्हें जगाया और मुझसे दूर रहने की शिक्षा दी। यह आपने मेरे साथ अन्याय किया है। आपने ब्रह्मा के द्वारा, ब्रह्मास्त्र जिन आत्माओं को दिया उन्हीं ने मुझसे घृणा की, मुझे दुत्कारा, मेरी बेइज्जती की और अपने आपको ब्रह्माकुमार-ब्रह्माकुमारी कहलाने लगे। मुझे अब इन्हीं सफेद वस्त्रधारी तुम्हारे बच्चों से बेहद ईर्ष्या होती है। क्योंकि इन्हें देखते ही मेरे महारथी योद्धा—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मूर्च्छित हो जाते हैं। इन्हीं की वजह से धीरे-धीरे मेरा शासन समाप्त होता जा रहा है। हे शिव परमात्मा जी, आपने जो ज्ञान योग के अस्त्र इन्हें दिये हैं अब उनकी धार बहुत ही तीव्र हो चुकी है जिससे लड़ने की सामर्थ्य अब हमारे सैनिकों में नहीं रही है। हमारे सैनिक कभी-कभी धोखे से इन पर वार करके इन्हें घायल भी कर देते हैं परन्तु आप की मुरली रूपी ट्यूब से निकला मरहम इन बी० के० के घाव को फिर से ठीक कर देता है। हे शिव परमात्मा जी, अब आप की तैयार की हुई रूहानी सेना बहुत विशाल हो चुकी है, आपको अभी भी सन्तोष नहीं है। और जो भी बाबा-बाबा कह कर आपके पास आता है, आप फौरन उसे अपने गले लगा लेते हैं। और मेरे सेनापतियों से लड़ने के लिये ज्ञान योग के अस्त्र देकर अपनी सेना में भर्ती कर लेते हैं।

हे शिव परमात्मा जी, मुझे आपसे भी जलन और ईर्ष्या होने लगी है, आपने मेरे २५०० वर्ष से चल रहे शासन की मजबूत जड़ों को हिला दिया है। और आबू पर्वत पर जो यज्ञ रचा है उसमें मेरे सभी महारथियों की आहुति दे दी है। मैं अपने नशे में रही और आपने मेरी जड़ें खोखली कर दी हैं।

लेकिन अब मैं इज्जत के साथ यहाँ से जा रही हूँ क्योंकि मुझे स्वर्ग बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है, आपका स्वर्ग आपके बच्चों को ही मंगलमय हो। लेकिन याद रहे कि द्वापर युग में मैं फिर अपनी सेना सहित आऊँगी और आपके इन बच्चों के ऊपर शासन करूंगी और आप २५०० वर्ष तक परमधाम में रहकर इनकी दुर्दशा होते देखेंगे। मैं हार गई और आपके बच्चों की जीत हुई और इसका कारण भी आप ही हैं।

अच्छा दुख के साथ आपसे विदा लेती हूँ परन्तु जाते-जाते आपको यह भी बता दूँ कि मैं इतनी कमजोर होने पर भी मौका मिलते ही आपके बच्चों पर वार करूंगी। जब तक मुझमें थोड़ा भी दम रहेगा मैं वार करती रहूँगी। आप अपने मीठे बच्चों और मेरे दुश्मन बच्चों को बचाते रहें।

बस अब अधिक क्या लिखूँ आपके बच्चे तो अब मुझसे ज्यादा ही समझदार हैं। थोड़े लिखे को बहुत समझना यह पत्र अपने बच्चों को भी सुना देना।

आपसे मुकाबला करने वाली, आधाकल्प की रानी, पांच महाराक्षसों की महारानी

'माया'

लेखक बी० के० ब्रजेश; बरेली

फिरोजपुर कैन्टः ब्र० कु० उषा जी चरित्रनिर्माण प्रदर्शनी के चित्रों की व्याख्या करते हुए, दर्शक ध्यान पूर्वक सुनते हुए।

गुण मूर्त जगदम्बा मीठी माँ की सुनाई हुई धारणा युक्त प्वाइन्टस

१.माइनस और प्लस कैसे करना है

हमारे यहाँ यही माइनस पल्स (— +) की पढ़ाई है कि श्रेष्ठ कर्म कैसे हो। अब वह श्रेष्ठ कर्म तब बन सकते हैं जब पिछले विकर्मों का बोझ न हो। पिछले विकर्मों का बोझ आगे बढ़ने नहीं देगा। इसके लिए पहले विकर्मों को काटने की शक्ति चाहिए। पहले माइनस (—) कर फिर प्लस (+) करना है। श्रेष्ठ कर्मों को जोड़कर प्लस (+) करना और पिछले विकर्मों को (—) कर काटना है तो इसके लिए एक माइनस (—) यानी योग चाहिए। दूसरा प्लस (+) यानी ज्ञान की शाक्ति चाहिए। यही इस पढ़ाई की दो सबजेक्टस हैं। जिससे माइनस (—) और प्लस (+) करने का बल मिलेगा।

२. कर्म बन्धन को काटने की युक्ति क्या है।

पहले तो बुद्धि में यही धारणा रहे कि हम शुद्ध आत्मा हैं, हमें अपने पुराने संस्कारों को छोड़ना ही है अर्थात् हमें अपने अपवित्र संस्कारों को छूना भी नहीं है। जैसे कोई अपवित्र संस्कार वाली आत्मा को छूना नहीं होता ऐसे अपने अपवित्र संस्कार वाली आत्मा को छूना नहीं है। यह युक्ति रखने से कर्म बन्धन चुक्तु होता जायेगा।

३. मंसा को कन्ट्रोल करने की युक्ति क्या है?

इस समय हमारे अपने संकल्प वेस्ट न जायें, इसके ऊपर खबरदारी रखनी है। इस की युक्ति यह है कि अपनी बुद्धि को परमात्मा से कनेक्ट कर देना। क्योंकि अगर मंसा में फाल्तू संकल्प चलते हैं, तो अपना नुकसान हो पड़ता है, अब हमको ब्रेक देने की युक्ति आनी चाहिए। जैसे ड्राइवर को मोटर को ब्रेक देने, मोड़ने, हर बात को करने का तरीका आता है तब ही एक्सीडेंट से बच सकते हैं। वैसे हमको भी मंसा को ब्रेक और मोड़ने की अर्थात् व्यर्थ को शुद्ध संकल्प, समर्थ संकल्प में परिवर्तन करने की युक्ति आने से हमारा मन, वचन, कर्म शुद्ध हो जायेगा और खुशी भी रहेगी।

४. बाप को फॉलो कैसे करना है

ब्र. कु. कमलमणि, देहली

परमात्मा बाप के हर फरमान को २० नाखुनों का ज़ोर देकर पूरा फॉलो करना है। बाप बच्चे का सम्बन्ध भी कर्म से चलता है। सिर्फ गोद का बच्चा नहीं बनना है। परन्तु श्रेष्ठ कर्मों से उनसे पूरा सम्बन्ध जोड़ना है। पूरी प्रापर्टी लेन के लिए बाप को पूरा फॉलो करना है। इसलिए जो भी फरमान है अपने बुद्धि में रखते हुए प्रैक्टिकल जीवन में दिखाना है और फॉलो करना है।

५. प्रैक्टिकल जीवन का स्वरूप क्या है?

कोई भी कार्य व्यवहार करते हुए सोल-कानशस होकर साक्षी हो पार्ट बजाना है, गृहस्थ व्यवहार में रहते बाल बच्चों को सिखलाने के लिए डाटना भी है, मूड को सीरियस बनाना है कि वह समझें कि ये डांट रहे हैं, बाहर में एक्टिंग सीरियस रख अन्दर से हर्षित रहना है, ऐसे समझना कि मैं जान बूझकर क्रोध का पार्ट बजा रहा हूँ- ऐसे सोल-कानशस रहकर पार्ट बजाना ही प्रैक्टिकल जीवन है।

६. तीव्र पुरुषार्थ किसको कहा जाये?

अभी हम नई दुनिया बनाने के निमित्त हैं इसीलिए हमको जो कुछ करना है वह नई दुनिया के लिए। जैसे बाबा नई दुनिया की स्थापना व पुरानी दुनिया का विनाश करा रहे हैं तो हमको भी जीते जी पहले से बुद्धि से इस पुरानी दुनिया का विनाश करना अर्थात् भूलना है, यही बुद्धि में रहे कि ये दुनिया पिछाड़ी का श्वास ले रही है, मुर्दा से दिल नहीं लगानी है, अपनी अवस्था की डिग्री देखते जाओ कि पुरानी दुनिया से आसक्ति टूटती जाती है। अगर टूटती है तो समझो कि हम नई दुनिया के बन रहें हैं ऐसा पुरुषार्थ करना ही तीव्र पुरुषार्थ है।

७. बाप पारलौकिक और लौकिक बाप कैसे हैं?

जैसे बाप बच्चे का प्रैक्टिकल रिश्ता होता है। वैसे पारलौकिक बाप, पारलौकिक भी है तो लौकिक भी है क्योंकि अभी तो परलोक से इस लोक में आया है, अभी इस लोक में उपस्थित है तो बाप से सर्व रिश्ते मन, वचन, कर्म से प्रैक्टिकल में निभाने हैं।

८. जीव आत्मा अपना शत्रु अपना मित्र है जो करेगा सो पायेगा

ये बात भी कोई पकड़ ले तो बेड़ा पार है, अपने ही कर्मों का हिसाब किताब है,

अपने ही कर्मों को ठीक रखना है, ऐसे भी नहीं कर्मों को दोष देना है कि हमारे कर्म ही ऐसे हैं। कर्म भी तो अपने करने से बने, अब जो बनाओ वह बनेगा, हम जो करते हैं वही ड्रामा बनता है, तो न ड्रामा पर, न तकदीर पर, न कर्मों पर दोष रखना है, पुरुषार्थ कर ऊँची तकदीर बनानी है, कोई पर दोष लगाए ठँडा हो चलना यह कमजोरी की निशानी है।

९. ऐसी कौन सी बात बुद्धि में रहे जिससे पुरुषार्थ आसान हो?

बुद्धि में एक बात निश्चय में आ जाए कि हम इन आँखों से जो कुछ देखते हैं वह सब विनाशी है, इसका विनाश होना है, इस में आसक्ति रखने से कुछ मिलना नहीं है। इसलिए इनसे बुद्धि हटाए नई दुनिया में मालामाल बनेंगे, इस जीवित दुनिया को मरा हुआ देखना और जो दुनिया अब नहीं है, आने वाली है, उसको ज़िन्दा देखना, गोया न देखी हुई चीज को याद करना और जो अब देख रहे हैं उस देखी हुई चीज को भूलना-इस बात से ही पुरुषार्थ करना आसान है।

¤

माँ सरस्वती के प्रति

लगता नहीं कि मां को हमने देखा है नहीं।
सब देख रहे सुन रहे हम वो तो हैं यहीं।।

बाबा और मम्मा दोनों तन की दोनों आँख हैं
उनको देख जी रहे हम तो सुबह-सांझ हैं।
सूर्य-चांद जिन्दगी ते आसमां-जमीं...

खाली हाथ आयी थी लक्ष्मी बन गयी
पीछे आके सबसे आगे तुम निकल गयी।
क्या गजब की खूबियाँ थीं कुछ कमी नहीं.....

बाल-ब्रह्मचारिणी सर्व शक्ति धारिणी
ज्ञान वीणा वादिनी, सुर-सरित प्रवाहिनी।
ब्रह्मपुत्रा बड़ी नदी बनके तुम बही.....

वाणी में मिठास व प्रवाह था स्पष्ट था
उस अदम्य शक्ति से झेला जो भी कष्ट था।
अगाध व विशाल उर में बात हर गही...

अंगूर की लतायें तुमको बुला रही हैं
२४ जून वाली घटना सुना रही हैं।
आ जाओ मिल लो हमसे तुम हो जहाँ कहीं..

हमसे पहले चलके तुम तैयारी कर रहीं
लगता नहीं कि माँ को हमने देखा है नहीं।।

बी० के० प्रेमकुमार आबु

मेरठः आध्यात्मिक सम्मेलन में ब्र० कु० जगदीश जी प्रवचन करते हुए, बाईं ओर भ्राता रामसिंह जी, अध्यक्ष जिला परिषद् तथा दाईं ओर भ्राता आर. के. रस्तोगी अतिरिक्त जिला सत्र-न्यायाधीश, ब्र० कु० कमलसुन्दरी तथा ब्र० कु० आशा उपस्थित हैं।

कहानी

नीयत का प्रभाव

प्यारे बच्चो, कुछ लोकोक्तियाँ अथवा कुछ मुहावरे, अपनी बात को दूसरों तक इशारे में पहुँचाने के लिए मनुष्य इस्तेमाल करता है। इसमें बोलचाल की भाषा में एक मुहावरा प्रयोग किया जाता है-"दिल साफ मुराद हासिल" अर्थात् मन शुद्ध है तो इच्छा पूर्ण हो सकती है। परन्तु मनोस्थिति को प्रथम स्थान दिया गया है। कई बार, बच्चो, आपने देखा होगा कि कुछ नव-निर्मित भवनों के बाहर की तरफ भिन्न-भिन्न भयानक रूपों से चित्रित कुछ मटके लगे हुए होते हैं। लोगों का जिसके विषय में कहना है कि भवन को 'नजर' न लगे। वास्तव में देखा जाए तो ये 'नजर' क्या चीज होती है? देखने में ऐसा आता है कि मन की शुभ-अशुभ भावनाओं के प्रकम्पन्न किसी भी चीज पर अच्छा या बुरा प्रभाव छोड़ते हैं। कोई मनुष्य जब किसी चीज को देखता हुआ खुश नहीं होता और इर्ष्या या घृणा की भावनाएँ उसके मन में पैदा होती हैं, तो वह अपना प्रभाव उस चीज पर अपने अशुभ प्रकम्पन्नों के रूप में छोड़ता जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य की शुद्ध और अशुद्ध मनोवृत्ति का प्रभाव किस तरह किसी अन्य प्राणी पर, प्रकृति पर या वायुमण्डल पर पड़ता है, जिसके प्रभाव में आने से उनमें परिवर्तन होने लगता है, जिस पर कि द्वापर युग के अन्त की एक बात याद आती है कि

एक राजा अपने मन्त्री के साथ शिकार पर निकला। शिकार की खोज में वे दोनों जंगल में आगे की ओर बढ़ते जा रहे थे। इतने में राजा को एक शिकार दिखाई पड़ा और उस शिकार के पीछे भागते-भागते राजा बहुत आगे निकल गया और मन्त्री का घोड़ा थोड़ा बिदक जाने के कारण पीछे रह गया। मन्त्री को, सख्त प्यास लगी थी। प्यास बुझाने के लिये वह इधर-उधर देखने लगा कि कहीं से उसकी प्यास बुझ सके। थोड़ी ही देर के पश्चात् उसे एक कुटिया दिखाई पड़ी। वह कुटिया एक किसान की थी, जिसने कि अपने आस-पास की जमीन पर खेती की हुई थी, जहाँ बहुत ही सुन्दर भरपूर हरियाली वाले वृक्ष लगे हुए थे और उन वृक्षों पर बहुत ही सुन्दर दिखने

ब्र० कु० चक्रधारी, दिल्ली

वाले पौष्टिक और रसीले फल लगे हुए थे, जिनको देखते ही खाने का मन हो आता था। मन्त्री जी अपनी प्यास बुझाने के लिए उस कुटिया के दरवाजे पर पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही उन्होंने दस्तक दी, जिसे सुनकर उस कुटिया का मालिक वह किसान बाहर आया और आगन्तुक की तरफ देखते हुए बोला कहो महाराज, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? मन्त्री जी ने कहा अभी तो मुझे केवल बहुत जोर से प्यास लगी है, अगर आप जल पिला दें तो बड़ी राहत मिलेगी। वह किसान अपने बाग में गया और वहाँ से दो-चार फल तोड़ लाया, उन फलों से रस निकाल कर बड़े ही आदर भाव से उसने आगन्तुक को वह फलों का स्वादिष्ट रस भेंट किया। मन्त्री बहुत ही प्रसन्न हुए क्योंकि एक तरफ तो उनकी प्यास बुझी दूसरे तरफ, रसीले तथा पौष्टिक पदार्थ भी खाने को मिले।

परन्तु, क्योंकि वह मन्त्री थोड़ा लोभवृत्ति वाला व्यक्ति था, इसलिए उसकी वृत्ति में उन फलों को देख लोभ भर गया। उसने किसान को धन्यवाद किया और वहाँ से चल पड़ा। मन्त्री का यह स्वभाव था कि वह सदा पैसा इकट्ठा करने की उधेड़-बुन में लगा रहता था। ताकि राजा खजाना भरपूर देख कर उसे बहुत महत्व दे। इसलिए उसे रास्ते में विचार आया कि यह फल तो बहुत अच्छे थे। बहुत रसीले, मीठे, पौष्टिक थे। स्वादिष्ट भी बहुत थे। उसने सोचा इस देश की धरती की पैदावार तो बहुत अच्छी है, इसलिए यहाँ की धरती पर काफी 'कर अथवा लगान' लगाना चाहिए।

जब मन्त्री वापस महल में पहुँचा और राजा की कुशलपूर्वक पहुँच के बारे में समाचार लेने के लिए उनसे मिला तो उसने सारा किस्सा राजा को कह सुनाया कि रास्ते में वह एक किसान की कुटिया में पानी पीने के लिए रुका था, किसान ने उसे पानी की बजाए जो फलों का रस पिलाया था, उनकी महिमा करते हुए कि वह फल कितने पौष्टिक, कितनी अच्छी नसल के थे, ये बताते हुए उसने राजा से कहा कि महाराज, ये मैं इसलिए सुना रहा हूँ क्योंकि इसके विषय में मेरा एक सुझाव है, अगर हुजूर उसे पसन्द करें तो वह हुक्मनामा जारी कर दे।

राजा बोला! मन्त्री जी आपकी राय, सलाह और सुझाव सदा ही अच्छे होते हैं, उनसे सरकार को सदा फायदा ही होता है। अवश्य ही अब भी कोई लाभकारी राय ही होगी, कहिये क्या कहना चाहते हैं?

मन्त्री बोला, "महाराज मेरा ऐसा विचार है कि जिस धरती से इतना स्वादिष्ट, रसीले, पौष्टिक, लुभावने फल उगते हैं तो जरूर किसान उनकी बिक्री से अच्छा आर्थिक लाभ लेता होगा। अतः मैं ऐसा समझता हूँ कि यहाँ की धरती पर कर अथवा लगान की रकम बढ़ा देनी चाहिए।"

राजा बोला, "मन्त्री जी, आपने जो बात कही है वो मुझे भी उचित लगती है और हमें पसन्द है, इसलिये दरबार का हुक्म है कि ऐसा ही किया जाये।" राजा की स्वीकृति प्राप्त होते ही मन्त्री ने हुक्मनामा जारी कर दिया।

इस तरह से समय बीतता जा रहा था, कुछ वर्ष पश्चात् मन्त्री जी राजा के साथ फिर से उसी कुटिया के सामने आ रुके अपनी प्यास बुझाने के लिये। किसान ने आगन्तुकों को आते देख अपने स्वभाव के अनुसार उन दोनों का आतिथ्य किया। वह बाग में गया और क छोटी-सी टोकरी में फल भर कर ले आया और उन फलों से रस निकालने लगा परन्तु इस बार इतने सारे फलों से थोड़ा ही रस निकला। वह रस भी न तो पान में स्वादिष्ट था और न ही पौष्टिक। मन्त्री जी को फलों के रस से इस बार आनंद नहीं आया। मन्त्री जी देख रहे थे कि फल सूखे-सूखे से हैं, न तो वे पहले जैसे रसीले थे, न ही मीठे थे, और न ही स्वादिष्ट थे। आखिर मन्त्री जी से रहा न गया। उन्होंने उस किसान से पूछ ही लिया। मन्त्री ने कहा, "जमींदार जी शायद आपको याद नहीं, पिछली बार जब मैं आया था तब भी आपने मुझे रस पिलाया था, परन्तु उन फलों के रस में और इन फलों के रस में तो रात-दिन का अन्तर है। समझ नहीं आया वही खेत, वही बीज है, उनका संरक्षण करने वाले आप भी वही हैं, फिर इनमें इतना अन्तर क्यों पड़ गया ?"

किसान ने दोनों की तरफ देखा और कहा, "महाराज, मुझे आपका परिचय नहीं है कि वास्तव में आप कौन हैं? इसलिये सच्ची बात बताने में मुझे कुछ संकोच हो रहा है।" मन्त्री बोला, "जमींदार जी, इसमें संकोच करने की बात नहीं हैं। आप निःसंकोच बताइये कि क्या बात है?" किसान ने कहा सच बतलाऊँ महाराज, हमारे राजा की नीयत बदल गई है, जिसके कारण ही यह सब हुआ। अच्छी फसल, अच्छी पैदावार देख राजा ने जमीन का लगान बढ़ा दिया। उसकी इस लोभवृत्ति के परिणाम स्वरूप यह सब हुआ। राजा ने जब यह सुना तो उसके पैरों से जमीन निकल गई। मन्त्री जी भी खिसियाई नजरों से राजा की तरफ देख रहे थे। दोनों की बुद्धि में वास्तविकता समझ आ गई थी।

तो प्यारे बच्चो, मनुष्य की मनोवृत्ति के प्रभाव से, चाहे वह शुभ है या अशुभ, शुद्ध है या अशुद्ध है, हर एक चीज उससे प्रभावित होती है चाहे वह कोई व्यक्ति विशेष है चाहे प्रकृति है या चाहे वायुमण्डल है। हमारी मनोवृत्ति के प्रभाव से भी किसी भी चीज में परिवर्तन आने लगता है। तो ऐसे विशेष समय में जब स्वयं परमपिता परम आत्मा ब्रह्मा मुख द्वारा ज्ञान-धारा प्रवाहित कर हमारी मनोवृत्तियों को पावन बना रहे हैं, जिनके आधार से ही हम एक श्रेष्ठ परिवर्तन लाने का पुरुषार्थ कर रहे हैं, पूरी तरह से लाभान्वित हो जन-जन के कल्याण अर्थ सेवा मे लग जायें। अपनी पावन मनोवृत्ति द्वारा इस विश्व को श्रेष्ठ अथवा पावन बना दें।

नवांशहर में रामनवमी पर निकाली गई झांकियों का दृश्य। ब्र. कु. भाई बहिनों के साथ शहर के मुख्य व्यक्ति खड़े हैं।

सच्चा दोस्त - परमपिता परमात्मा

जीवन में परिवार और सगे संबंधियों के रहते हुऐ भी दोस्त के रूप में किसी न किसी साथी की ज़रूरत सभी को होती है । दोस्ती का अपना महत्व अलग होता है जिसे मनुष्य को समझना चाहिये । सच्चा दोस्त वही होता है जिसका मन साफ़ हो और हर परिस्थिति में दुःख-सुख, मान अपमान सब में सहभागी होकर हित की बात सोचे । परन्तु आज के युग में ऐसे दोस्त बहुत कम दिखाई पड़ते हैं । अधिकांश मनुष्य किसी न किसी स्वार्थ से बंधे हुये होते हैं, स्वार्थ पूरा होते ही एक दूसरे को भूल जाते हैं। इस प्रकार के स्वार्थी रिश्तों को दोस्ती नहीं कहा जाना चाहिये । दोस्ती उसे कहते हैं जो सच्चे मन से निःस्वार्थ भाव से की जाती है । जैसा कि तुलसी दास जी ने भी कहा है कि

"देत लेत मन संक न धरई ।
बल अनुमान सदा हित करई।।
विपत्ति काल कर सत गुन नेह ।
श्रुति कह संत मित्र गुन एह ।।

अर्थात् जो लेने - देने में शंका न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे, विपत्ति के समय में तो सदा सौ गुना स्नेह करे,उसे ही श्रेष्ठ या संत मित्र कहते हैं।

जो सामने तो बना बना कर वचन करता है और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है, इस तरह जिसका मन सांप की तरह टेढ़ा है – ऐसे मित्र या दोस्त को तो छोड़ने में ही भलाई है ।

गोस्वामी तुलसी दास ने लिखा है
धैर्य, धर्म, मित्र और नारी की परख तभी होती है, जब मुसीबत का समय सामने आता है । वैसे अच्छे वक्त में तो सभी साथ देते हैं पर जब गरीबी व मुसीबत का पहाड़ टूटता है तो बहुत से दोस्त किनारा कर जाते हैं । अंग्रेज़ी में भी कहावत है कि "ए फ्रेन्ड इन नीड इज़ ए फ्रेन्ड इनडीड" (A friend in need is a friend indeed) । जो दोस्त ज़रूरत के समय काम आये वही सच्चा दोस्त है ।

जैसे - २ संसार में स्वार्थों के घेरे बढ़ते जाते हैं वैसे -२ दोस्ती के बंधन भी ढीले होते जाते हैं । आज आदमी खुद में केन्द्रित होता जाता है । पहले जो दोस्तों के बीच आत्मीयता थी उसमें कमी आती जाती है

आज जब कोई दोस्त अपने दूसरे दोस्त से उसके दोषों की तरफ ईशारा करता है तो पहले इनमें बोलचाल बन्द हो जाती है, बाद

ब्र. कु. रामेश्वर, छतरपुर

में दोस्ती दुश्मनी में बदल जाती है । दोस्तों के लिए अपने आपको न्यौछावर करने वाले आज मुश्किल ही मिल पाते हैं । जबकि होटलों में गुलछर्रे उड़ाने वाले दोस्त तो बहुत मिल जाते हैं । आज कल लोग जान-पहचान वालों और दोस्तों के बीच फर्क तक नहीं कर पाते। नतीजा यह होता है कि उनमें जो अभिन्नता के रिश्ते कायम होने चाहियें वे नहीं हो पाते। याद रहे कि जान पहचान वालों की संख्या सैकड़ों में हो सकती है लेकिन दोस्तों की संख्या अंगुली पर गिनने लायक होती है ।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आज के इस युग में सच्चा दोस्त मिलना मुश्किल सा हो गया है, तो क्यों न हम अपना दोस्त परमपिता परमात्मा को बना लें जो कि हर समय साथ रहता, किसी भी प्रकार की विपत्ति आने पर साथ नहीं छोड़ता । वही परमपिता ही हमारे सुख - दुख और समस्याओं में सहभागी होकर

मन को उलट देने से मन नम हो जाता है, जो नमता है, वही पाता है ।

हमारे हित की बात सोच सकता है । एक बार उस खुदा - दोस्त के प्यार की अनुभूति करके तो देखो । परमात्मा जैसा दोस्त कहीं नहीं मिलेगा जो मंज़िल की अन्तिम सीढ़ी तक साथ नहीं छोड़ता और सुख के अलावा कुछ नहीं देता ।

मैंने भी अपने जीवन में दोस्तों की ही तलाश की । लेकिन मुझे इस संसार में सच्चा दोस्त आज तक नहीं मिला सिवाय परमपिता परमात्मा के और जितने भी दोस्त मिले सब स्वार्थ सिद्ध करने वाले मिले । इसलिये जब से खुदा दोस्त मिल गया तो ऐसा निस्वार्थ स्नेह और प्यार मिला कि अब कोई भी दोस्त ढूंढने की आवश्यकता ही नहीं रह गई है । निःस्वार्थ प्रेम ही सच्ची मित्रता का आधार है, जिसे जीवन में जगह देनी चाहिये ।

अतः आप भी परमपिता परमात्मा को अपना दोस्त बनायें और सच्ची और पवित्र दोस्ती का अनुभव करें, उसके पवित्र प्यार का अनुभव करें । यह ऐसा मित्र है कि अगर आपने एक बार इससे दोस्ती कर ली तो आप यदि भूल भी जाओ लेकिन यह दोस्त अपनी दोस्ती नहीं भूलेगा । समय आने पर ज़रूर निभायेगा । अगर विश्वास न हो तो एक बार दोस्ती कर के देख लीजिये।

'विशेषात्मा'

आते ही हैं आते रहेंगे उतार चढ़ाव तो जीवन में,
चढ़ाव चढ़ाव याद रखें उतार उतार विसार के,
स्वर्णिम सुखद अनुभवों की लेन देन से हर मन संवार के
हर मिलन पे हर ब्राह्मण को सुख सौगात का श्रृंगार दे
सुखदेव बने, सुखलेव बने आत्मा वही विशेष है।
हकदार सुखमय संसार की उसे राज्याभिषेक है।
हुंआ ही करते हैं अक भी, गुलाब भी, कांटे भी सदा बहार भी
उगा ही करते हैं खुद ब खुद खरपात भी कंटीले झाड़ भी
खरपात उखाड़ के, हर पात पाल के, सँजोए गुलाब जो
वहीं फिर सुगन्ध देव है सुखदेव है सुखलेव है विशेष है।
हकदार सुखमय संसार की अमृत मन संल्लेप है।
आई हो कही से भी, करे जो सुधार, मत वही श्रेष्ठ है,
स्थिर, संयमित, मर्यादित जो जीवन वही विशेष है
करे रचनात्मक, विचारे सकारात्मक, चुने मार्ग विवेकात्मक।
सच्चे अर्थों में समझना उसे ही आध्यात्मक,
न कोई मूँझ की नूँध भरे कल्प में सरल जो वही श्रेष्ठ है।
जो स्पष्ट है उल्लसित है शिव मार्गी है वही सेफ है।
सुखदेव है सुखलेव है आत्मा वही विशेष है।
निर्माण है निर्मान है सफलीभूत जिसका वर्तमान है
सहज स्वभाव, कर्मधनी, हर पल अनुभूतियों का वरदान है
चल सके मिल के सर्वत्र, परख, निर्णय, धीरज की खान है
जाया करे गहराई में सत्य की और परश्रवण से निर्लेप है
स्वमान पे सैट, होवे न करे कभी अपसैट, वही विशेष है
सुखदेव बने, सुखलेव बने आत्मा वही विशेष है
हुआ ही करते हैं अच्छे बुरे तो संसार के हर परिवार में
बनावे फहरिस्त फरिश्तों की, पवित्रों की अपने मन संसार में
देखें खुद को, सिमरें खुदा को, करे बुलन्द खुदी को,
आनन्द का अतिरेक है जिसमें वही विशेष है।
न ठगे न ठगाए भावनाओं को शुभ का अभिषेक है।
सुखदेव बने सुखलेव बने 'आत्मा वही विशेष है।'

ब्र० कु० राज कुमारी, मजलिस पार्क देहली

निज़ामाबादः उद्योग प्रदर्शनी में आध्यात्मिक स्टाल के चित्रों का अवलोकन कराती हुई ब्र. कु. शोभा जी।

हाथरसः ग्राम हदीसा में ब्र. कु. स्वदेश ग्रामीण नेताओं एवं ग्राम पंचायत के सदस्यों के समक्ष भाषण करते हुए।

सर्वश्रेष्ठ धर्म

यह मान्यता प्रचलित है कि धर्म से अनेक प्राप्तियां होती हैं। धर्म से 'अर्थ' अर्थात् वित्त की प्राप्ति होती है। धर्म से सुख का उदय होता है, धर्म से सर्व इच्छायें पूर्ण होती हैं और धर्म ही सर्व जगत का सार है। इतनी उच्च महिमा धर्म की सब मानते हैं। धर्म का यश व गायन इतनी महान् रीति से सबने गाया है तो अवश्य इस प्रश्न का भी उत्तर चाहिए कि संसार में प्रचलित अनेक धर्मों में से सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन सा है? आदि सनातन देवी-देवता धर्म, जोकि आज 'हिन्दु धर्म' के नाम से प्रचलित है, इसलाम धर्म. बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, जैन धर्म, सिक्ख धर्म, शिन्टो धर्म आदि-आदि आज के समाज में गणमान्य, प्रचलित, मुख्य धर्म है। इन धर्मों की कई शाखायें निकलकर इतनी फैल गई हैं कि कई स्थानों पर मुख्य धर्म का रूप ले लिया है जैसे कि बौद्ध धर्म में महायान और हिनयान, दो पंथ हो गये हैं। तो जब हम इस विषय पर विचार करते हैं कि सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन-सा है तब समझ में आता है कि अवश्य ही कोई माप-दंड चाहिए जिसके आधार पर हम कह सकें कि यह धर्म सर्वश्रेष्ठ धर्म है। तो वह माप-दंड क्या होना चाहिए? क्या ऐसे समझें कि जिसकी मान्यता सृष्टि के प्रत्येक कोने में हो, उसे ही सर्वश्रष्ठ धर्म माना जाये, या ऐसे कहें कि जिसकी मान्यता बहुत अधिक समय से चली आती हो, वही श्रेष्ठ धर्म है, या जिस के अन्दर मानव समाज को श्रेष्ठ मार्ग-प्रदर्शन अपनी आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए मिलता हो वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है? या ऐसे समझें कि जिस धर्म में तत्व ज्ञान अर्थात् व्यक्त और अव्यक्त-सृष्टि की परिभाषा और सृष्टि के आदि-मध्य-अन्त का सम्पूर्ण तर्क-युक्त ज्ञान हो उसे ही सर्वश्रेष्ठ धर्म माना जाये?

हमारे विचार में, 'सर्व-श्रेष्ठता' का निर्णय करने के लिए निम्नलिखित पाँच सिद्धान्त हमें माप-दंड के रूप में अच्छी प्रकार काम आयेंगे और इनकी जाँच करने से पता पड़ेगा कि इन सब धर्मों में से सर्वश्रेष्ठ धर्म कौनसा है?

१. धर्म का स्थापक कौन है?-यह तो सबको विदित है कि प्रत्येक धर्म का कोई न कोई स्थापक तो जरूर होता है। परन्तु यह किसी को भी पता नहीं है कि धर्म स्थापन करने वाली आत्मा परमधाम से आकर उस तन-धारी में प्रवेश करके उसकी आत्मा के साथ अपना कार्य करती है। अर्थात्, धर्म-स्थापक की आत्मा तथा उस तन-धारी की आत्मा—इन दो आत्माओं के संयुक्त पुरुषार्थ के आधार पर धर्म की स्थापना होती है। देखा जाये तो धर्म-स्थापक की जीवन कहानी से यह सिद्धान्त बहुत आसानी से समझ में आ जाता है। बाद में जब वह तन-धारी आत्मा अपना शरीर छोड़ती है तो अगले जन्म में दोनों आत्मायें गर्भ द्वारा अलग-अलग शरीर लेकर अपने धर्म की वृद्धि तथा पालना करती है। इस प्रकार, मनुष्यात्माओं द्वारा स्थापित धर्म बाद में वृद्धि को पाता है, परन्तु देवी-देवता धर्म इस प्रकार स्थापन नहीं होता। अर्थात्, उसका स्थापक कोई मनुष्यात्मा नहीं है। यह धर्म स्वयं सर्वशक्तिमान् परमपिता परमात्मा शिव ने स्थापन किया। परमात्मा ता पुनर्जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आते। अर्थात, धर्म-स्थापक के दृष्टिकोण से देखा जाये तो मनुष्यात्माओं की भेंट में तो अवश्य परमपिता परमात्मा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म-स्थापक माने जायेंगे। दूसरी बात यह भी है कि अन्य सभी धर्म-स्थापक तो केवल स्थापना और पालना करते है परन्तु परमात्मा तो विनाश और स्थापना, दोनों कर्त्तव्य करते हैं, विनाश करने या कराने की शक्ति अन्य किसी धर्म-स्थापक में नहीं है।

२. कर्म काण्ड (Rituals)- प्रत्येक धर्म में कर्मकाण्ड का होना आवश्यक है। कर्मकाण्ड धर्म का 'शरीर' है अर्थात्, यदि धर्म के बह्या स्वरूप को जानना हो तो वह है कर्मकाण्ड अथवा रीति-रिवाज। कर्मकाण्ड में तीन बातें आती हैं। एक है व्यक्ति के लिए, दूसरा समाज के लिए और तीसरा है व्यक्ति और समाज दोनों के लिए कर्मकाण्ड। अब यदि व्यक्ति के कर्मकाण्ड के नियम आदि पर विचार करें तो मालूम पड़ेगा कि हरेक धर्म-स्थापक के सामने स्थापना के समय पर भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ होती हैं। बुद्ध के समय यज्ञ में बलिदान की जटिल समस्या थी। मुहम्मद के सामने बहु-पत्नीत्व (Polygamy) का प्रश्न था। अर्थात्, किसी-न-किसी प्रकार से धर्म-ग्लानि का एक अंग समाज के अन्दर बहुत भारी अनिष्ट के रूप में व्याप्त होता है। इसलिए, धर्म-स्थापक समाज के सामने उसी प्रकार के कर्मकाण्ड की आदर्श भावनायें रखते हैं। नीति-नियम के बन्धन समाज की तत्कालीन व्यवस्था के आधार पर धर्म-स्थापक द्वारा बनाये जाते हैं। बुद्ध ने इसीलिए अहंसा को सर्व-श्रेष्ठ कर्मकाण्ड के रूप में समाज को सिखाया। मुहम्मद साहब ने चार से अधिक शादियाँ वर्जित बतायीं तथा व्यापार में ब्याज न लेना आदि-आदि सिखाया। परन्तु देवी-देवता धर्म में

यह जो मुख्य धारणा है कि सम्पूर्ण पवित्रता ही के आधार पर जीवन व्यवहार चलाना चाहिए, यह अन्य किसी भी धर्म में मुख्य रूप से देखने में नहीं आती। पवित्रता को तो सब धर्म-स्थापकों ने अपनाया है परन्तु उसे जीवन व्यवहार का आदर्श लक्ष्य तथा नींव बनाकर उसके आधार पर समाज का नव-निर्माण करने का प्रयत्न किसी भी अन्य धर्म में नहीं दिखाई देता। अर्थात्, सम्पूर्ण पवित्र मर्यादायें तथा पवित्र जीवन व्यवहार हो, ऐसे कर्म-काण्ड के प्रवर्तक तो एक देवी-देवता धर्म के संस्थापक परमपिता ही हैं। और, ऐसे पवित्र कर्मकाण्ड की मर्यादाओं द्वारा शोभायमान ऐसे समाज का २५०० वर्ष सृष्टि पर चलना कोई आसान कार्य नहीं है!

३. **तत्त्व ज्ञानः**- प्रत्येक धर्म-संस्थापक और धर्म-प्रवर्तक अपनी रीति से तत्त्व ज्ञान (Philosophy) का अनुमान लगाकर उस विषय में भी अपना विचार कहता है। तत्त्वज्ञान अर्थात् मूल तत्त्व का ज्ञान अर्थात् इस सृष्टि का रचयिता कौन है, सृष्टि का अस्तित्व कैसा है तथा सृष्टि का आदि, मध्य अन्त कैसा होता है, इत्यादि। इस विषय में हर धर्म में भिन्न भिन्न मत रहते हैं। अन्य धर्म-स्थापक स्वयं परमात्मा न होने के कारण परमात्मा के बारे में अपना अनुमान लगाते हैं। सृष्टि के आदि के समय न वे थे, न ही वे सृष्टि की आदि के निमित्त हैं, इसलिए सृष्टि की रचना से उनके आने तक के समय के इतिहास के बारे में उन्हें अनुमान लगाना पड़ता है जिस कारण उनके तर्ककल्पना-प्रधान हो जाते हैं। इस प्रकार वे सच्चाई से वञ्चित रहते हैं। उदाहरण के लिए शंकराचार्य मानते हैं कि "जगत् मिथ्या, ब्रह्म सत्य है।" परन्तु उन्होनें एक जगह इस सिद्धान्त को माना है कि सत् से कभी असत् का निर्माण नहीं हो सकता और असत् से कभी भी सत् पैदा नहीं हो सकता। अब यह तो सब मानते हैं कि परमात्मा ने सृष्टि की रचना की। तो प्रश्न यह है कि सत्य परमात्मा की रचना असत्य कैसे हो सकती है? और यदि सृष्टि मिथ्या अर्थात् असत्य होती तो (उनके मतानुसार) उसमें सत्य परमात्मा का सर्वव्यापक होना कैसे सम्भव है?

इसलिए उस तत्त्वज्ञान को ही श्रेष्ठ तत्त्व ज्ञान मानना चाहिए जो कि परमात्मा स्वयं सिखा रहे हैं क्योंकि परमपिता परमात्मा को अपना परिचय देने में या सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त का ज्ञान देने में कोई अनुमान नहीं लगाना पड़ता क्योंकि वह तो ज्ञान-सागर है। सदा पावन, ज्ञान के सागर परमात्मा तो शुद्ध ज्ञान का स्रोत बहाते हैं।

४. **संस्कृतिः**-मनुष्य-आत्मा अपने संस्कारों के अनुसार कर्त्तव्य करती है परन्तु संस्कार संस्कृति के आधार पर बदलते रहते हैं। संस्कृति ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाती है। संस्कृति ही भूतकाल के रीति, रस्म, रिवाज तथा अन्य बहु-मूल्य बातों को वर्तमान पीढ़ी के सामने रखती है। अब ऐसी सर्व-श्रेष्ठ संस्कृति का निर्माण धर्म द्वारा ही हो सकता है।

परन्तु जब हम धर्मों की ओर देखते हैं तो पता चलता है कि कई धर्म ऐसे हैं जिनकी स्थापना तो एक स्थान पर हुई और वृद्धि दूसरे स्थानों पर हुई। बौद्ध धर्म पहले भारत में स्थापित हुआ परन्तु भारत में अपने इस धर्म को फैलाने में अधिक समय तक उतनी सहायता नहीं मिली जितनी ब्रह्म देश, चीन तथा अन्य दक्षिण-पूर्व राज्यों में हुई। भारत की उस समय की संस्कृति को वे इतना नहीं बदल सके जितना वे चाहते थे। किसी भी देश की संस्कृति को बदलना अर्थात् लोगों का जीवन-व्यवहार, मान्यता, नीति, नियम आदि सब बदलना—यह कार्य सहज नहीं है। एक संस्कृति को जड़ से काटना और उसमें नया दृष्टिकोण पैदा करना एक जटिल प्रश्न है। इसी लिए सिक्ख तथा जैन धर्म स्थापकों ने तत्कालीन धर्म तथा उनसे निकली हुई संस्कृति में परिवर्तन न लाकर, उसको अपनाकर अपना धर्म स्थापन करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार धर्म तो नया स्थापन हुआ परन्तु उनसे कोई बिल्कुल नई संस्कृति नहीं बनी। मार्टिन लूथर, हैनरी अष्टम आदि ने यूरोप में तत्कालीन रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय को बदलकर प्रोटैस्टैन्ट सम्प्रदाय स्थापना करने का पुरुषार्थ किया। परन्तु नये मत में लोगों की श्रद्धा और भावना पैदा करने में वे असफल रहे। उन्होंने पुरानी और नई बातों में तो लोगों की श्रद्धा को कम कर दिया परन्तु नई श्रद्धा तथा मान्यता बनाने में असफल रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि नीति के बन्धन जो धर्म ने बाँधे थे वे टूट गये और अधार्मिक तथा स्वच्छन्द समाजवाद में तीन W.s. (Wealth, Wine and Women) अर्थात् कंचन, कामिनी और मदिरा के पीछे मानव भागने लगा। धन तो मिला परन्तु संस्कृति रूपी धन नष्ट हो गया।

इस भूमिका को ध्यान में रखकर यदि हम इस बात को समझने की कोशिश करेंगे कि परमात्मा ब्राह्मण-सूर्यवंशी - चन्द्रवंशी— इस प्रकार की कड़ी-बद्ध अथवा श्रृंखलाबद्ध संस्कृति की स्थापना कर रहे हैं तो हमें पता चलेगा कि परमात्मा का कर्त्तव्य कितना ऊँचा तथा महान् है। इतनी सर्वश्रेष्ठ संस्कार-युक्त संस्कृति किसी भी आत्मा ने नहीं बनाई, इसीलिए ही तो परमात्मा को परम-धर्म-स्थापक कहेंगे। वर्तमान 'हिन्दु धर्म' के प्रचलित शास्त्र, समाज के प्रचलित नीति-नियम आदि सब से

बुद्धि-योग हटाकर, नये संस्कार-प्रधान नई संस्कृति, जिसको सच्ची ब्राह्मण संस्कृति अर्थात् 'पावन संस्कृति', कहते हैं वह बनाकर उनसे ही सतयुगी देवी-देवताओं की सूर्यवंशी संस्कृति बनी। अतः अब २५०० वर्षों तक के लिए सारी मानव-सृष्टि के अन्दर एक अखण्ड, अद्वितीय संस्कृति बनाने का कर्त्तव्य चल रहा है। इस प्रकार हम देखेंगे कि आदि सनातन देवी-देवता धर्म तथा उसकी संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है। सतयुग में केवल वहाँ के सोने के महलों की जगमगाहट नहीं परन्तु वहाँ इस शुद्ध तथा सम्पूर्ण संस्कृति की भी जगमगाहट है जिसके कारण उसे 'स्वर्ण युग' अर्थात् Golden Age कहा जाता है। सभी संस्कृतियों की भेंट में यह ही सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। इसी कारण भी उसे स्वर्णमयी संस्कृति कहते हैं।

संस्कृति के साथ दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है युग की। सभी धर्म-स्थापकों ने आकर अपने-अपने पार्ट के अनुसार कर्त्तव्य किया। परन्तु युग-परिवर्तन अर्थात् युगान्तर का कर्त्तव्य किसी ने नहीं किया। हम देखते हैं कि पिछली दो शतियों में 'वाष्पयुग' (Steam Age), तेल युग (Oil Age), विद्युत युग (Electricity Age) तथा अणु युग (Atomic Age) — उनकी भाषा के अलंकारिक शब्दों में ऐसे युग हुए। हरेक ने मानव समाज की साधन-सामग्री में अपनी-अपनी रीति से वृद्धि की परन्तु मानव समाज में इतना परिवर्तन हो कि उन्हें युग के रूप में अलग-अलग किया जाए, ऐसा किसी भी धर्म के इतिहास में दिखाई नहीं देता। युग-परिवर्तन का कार्य तो केवल आदि सनातन देवी-देवता धर्म द्वारा अर्थात् उसके स्थापक सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा द्वारा ही हुआ।

५. ध्येय प्राप्ति

सभी यह अच्छी रीति से जानते हैं कि जीवन का ध्येय केवल बच्चा पैदा करना, धन-सम्पत्ति का उपार्जन करना ही नहीं है बल्कि कुछ और भी ध्येय है। आदर्श ध्येय क्या है, यह बात धर्म ही सभी को सिखाता है क्योंकि धर्म में ही नीति-व्यवहार, नियम सब आ जाते हैं। हरेक धर्म ने अपने-अपने उद्देश्य समाज के सामने रखे हैं। कई धर्म ऐसे हैं जो कि पूर्वजन्म को नहीं मानते। इसलिए, उन्होंने यह पुरुषार्थ करना सिखाया जिससे उन्हें कयामत के समय कम से कम सज़ा खानी पड़े। बौद्ध धर्म ने निर्वाण का अन्तिम ध्येय सामने रखा। लगभग यही मान्यताएँ सब धर्मों की हैं।

परन्तु हर धर्म के ये ध्येय कहाँ तक सत्य और यथार्थ हैं और कहाँ तक उनकी प्राप्ति हो सकती है, यह भी एक प्रश्न है। पहले भी इस बात का स्पष्टीकरण हो गया है कि मनुष्य, सृष्टि के आदि-मध्य तथा अन्त के इतिहास को नहीं बता सकता और न ही जान सकता है जब तक कि उसे परमात्मा द्वारा इसका पता न लगे। इसी प्रकार आत्मा अपने आदि तथा अन्त को नहीं जान सकती अर्थात् आत्मा का अन्तिम ध्येय क्या होना चाहिये— इस बात का सच्चा ज्ञान आत्मा नहीं जान सकती, इसलिए उसका ज्ञान तर्क प्रधान अधिक बनता है, और जब तक यह अनुभव प्राप्त नहीं किया है तब तक वह ज्ञान उनका अनुभव नहीं बल्कि तर्क है। ये तर्कऔर तरंग कहाँ तक सत्य कहेंगे, यह भी प्रश्न है।

देवी-देवता धर्म के संस्थापक हैं— परमात्मा। परमात्मा रचियता तथा त्रिकालदर्शी होने के कारण आत्मा के अनेक जन्मों की आदि-मध्य की कहानी को जानते हैं। इसलिए, यथार्थ जीवन ध्येय क्या होना चाहिए, यह केवल परमात्मा ही सच्ची रीति बता सकते हैं। सच्चे ध्येय की प्राप्ति का पुरुषार्थ क्या होना चाहिए, यह भी केवल परमात्मा ही बता सकते हैं। अनुभव भी ऐसा कहता है कि नर से श्री नारायण और नारी से श्री लक्ष्मी अर्थात् १६ कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी पुरुषोत्तम बनने का पुरुषार्थ परमात्मा द्वारा ही पता लग सकता है अर्थात् परमपिता परमात्मा द्वारा अन्तिम शिक्षा ध्येय की जो मिलती है वह भी इसी जन्म में मिलती है और तब ही मालूम पड़ता है कि अन्य दूसरे धर्मों के द्वारा प्रस्थापित जीवन – ध्येय न तो यथार्थ हैं न ही उनकी प्राप्ति भी हो सकती है। इसी कारण कितनी आत्माओं का पुरुषार्थ व्यर्थ जाता होगा, उसका अनुमान लगाना बहुत कठिन है। इस प्रकार ध्येय हमें सर्वश्रेष्ठ धर्म का निर्णय करने में सहायता देते हैं।

ऊपर बताये गये सिद्धान्तों के आधार पर हम कह सकते हैं कि देवी-देवता धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। इससे ही मनुष्यात्माओं का कल्याण तथा हर प्रकार की कामनायें परिपूर्ण होना सम्भव है। तो क्यों न हम आदि सनातन देवी-देवता धर्म तथा उसके संस्थापक परमपिता परमात्मा शिव को उन्हीं द्वारा जानकर अपना यह जीवन सफल बनायें।

नर से श्री नारायण एवं नारी से श्री लक्ष्मी पद प्राप्त कर सकते हैं यदि अब नहीं तो कभी नहीं

स्व-उन्नति तथा सर्व की उन्नति के लिये कुछ धारणा बिन्दु

७ अप्रैल १९८९ को ओमशान्ति भवन, माऊंट आबू में मीटिंग में आये हुए भाई बहिनों की अलग-अलग ग्रुप्स में भिन्न-भिन्न विषयों पर १२ वर्कशाप (कार्यशालायें) चलीं, कुछ कार्यशालाओं के प्वाईंट्स पिछले अंक में दिये थे, शेष इस अंक में दे रहे हैं।

वर्तमान समय प्रमाण ब्राह्मण परिवार को किस प्रकार की ईश्वरीय पालना की आवश्यकता है?

१. ईश्वरीय पालना किसे कहते हैं?

१. ईश्वरीय पालना हम उसे कह सकते हैं, जिससे आत्मा की उन्नति हो। २. आत्मा के अन्दर ईश्वरीय गुणों का विकास हो। ३. ईश्वरीय शक्तियों की प्राप्ति हो। ४. ईश्वरीय पालना से आत्मा का सम्बन्ध ईश्वर बाप के साथ ही जुटे। निमित्त आत्मा स्वयं बाप के समान मात पिता की पालना दे और ईश्वर के साथ सर्व सम्बन्धों की अनुभूति हो। आत्मा का प्रभाव न पड़े, ईश्वर मात-पिता के साथ ही संबंध जोड़े। ५. ईश्वरीय पालना से आत्मा में ईश्वरीय शिक्षाओं द्वारा जागृति लाकर परिवर्तन कर सके तथा ईश्वरीय मत का ही महत्व सदा जीवन में हो।

२. ईश्वरीय पालना कैसे की जाए?

१. इसमें सबसे पहले स्वयं की पालना करने का ढंग आना चाहिए। उसके लिए स्वयं में एक बल एक भरोसा चाहिए, निश्चयबुद्धि हो हर कर्म करें। तथा अपने पुरुषार्थ को सदा चेक करते रहें। दूसरों के लिए समस्या न बन समस्या समाधान करने वाले बनें। २. आश्रम का वातावरण बहुत शुद्ध हो। कोई नगेटिव थाट्स व वायब्रेशनस न हों। ऐसे पवित्र वायब्रेशनस हों, जो सबको खींच हो। ३. सर्व की उन्नति के लिए रोज ज्ञान योग की पढ़ाई के साथ योग भट्ठी, धारणा के क्लासेज, आपसी रूहरिहान आदि का समय प्रति समय प्रोग्राम रखते रहें। ४. सेवा के नये-नये प्लैन्स बनाने तथा प्रैक्टिकल करने का हरेक को चांस दिया जाए। ५. बड़ों से हरेक का सम्पर्क करायें ताकि वे अपने अन्दर विशेष बल भर सकें और नवीनता का अनुभव कर सकें। ६. सभी का सम्बन्ध यज्ञ से जुड़वाना है। यज्ञ का महत्व बताना है। ७. जब किसी के सामने कोई विघ्न आये या कर्मभोग आ जाए तो उनके प्रति सहानुभूति रखनी है और सहयोग दे, बाबा के महावाक्य सुनाकर उन्हें हल्का करें और उमंग उल्लास में ले आयें। ८. नये पुराने जो भी क्लास में आते हैं सबके साथ समान व्यवहार हो। नयों के आने पर पुरानों को भूल न जायें। व्यक्तिगत रीति से भी अटेन्शन दें ताकि वे भी आगे बढ़ते रहें।

३. वर्तमान समय प्रमाण किस प्रकार की पालना चाहिए?

१. सबके प्रति स्नेह हो। त्याग की भावना हो। स्वयं के प्रति त्याग करने से ही हम यथार्थ पालना दे सकेंगे। २. आने वाली आत्माएं जो निर्बल हैं, निराधार हो चल नहीं सकतीं, स्वयं की ऊंची स्थिति से योगयुक्त होकर उनकी स्थिति को ऊंचा उठाने में सहयोगी बनें ताकि वे स्वयं में हिम्मत ला सकें। ३. सहन करने की शक्ति हो, जैसे मां बच्चे के लिए सहन करती है, उसकी कोई भी बुराई नहीं सुनती, नहीं देखती, बल्कि सदैव उसके भले का ही सोचती है इसी प्रकार सबके कल्याण का ही सोचें। ४. सुनने की शक्ति हो, सब कुछ अपने अन्दर समाते जायें। शुभ भावना, शुभ कामना से उनके मन को परिवर्तन करें। उनकी कोई भी बात को बुरा न मानें। ५. लेने की इच्छा न हो। निःस्वार्थ भाव हो। मान देना है न कि मान लेने की इच्छा रखनी है। ६. स्वयं को सदा भरपूर रखें। अपने पास इतना खज़ाना हो ताकि समय पर उन्हें सन्तुष्ट कर सकें। ७. ईश्वरीय पालना में स्वयं के साथ रहने वाले साथियों को भी सन्तुष्ट करना जरूरी है। नहीं तो उसका प्रभाव दूसरी आत्माओं पर पड़ता है। ८. वर्तमान समय हमारा विद्यालय विश्व व्यापक है, कोई भी अच्छी या बुरी बात जल्दी ही चारों तरफ फैल जाती है इसलिए सदैव अपने बोल, कर्म पर ध्यान हो। ९. बाबा के वैराइटी बच्चे हैं, अनेक देशों से भिन्न रंग, जाति, धर्म के हैं — उन सबके प्रति हमारी समान दृष्टि हो। १०. एक दूसरे के साथ चढ़ती कला की बातें करें ताकि सब तरफ का वातावरण अच्छा बने। ११. सर्व के प्रति छोटा हो या बड़ा, सत्कार की भावना हो। सर्व को सत्कार चाहिए वह देते जायें। १२. मीठी बोली और टोली भी अपना महत्व ईश्वरीय पालना में बहुत रखती है।

ब्राह्मण परिवार में शुभ भावना और शुभ कामना की वृति को कायम कैसे रखें?

१. शुभ भावना, शुभ कामना और शुभ कामना में कमी आने के कारण

१. ईर्ष्या भाव से शुभ भावना और शुभ कामना में कमी आती है। २. संस्कारों का टकराव और मनमुटाव भी शुभ भावना, शुभ कामना

को कम करता है। ३. मान-शान की इच्छा रखने से और वह इच्छा पूर्ण न हो तो शुभ भावना और शुभ कामना में कमी आती है। ४.अनुमान और मिसअंडरस्टैंडिंग आपसी मतभेद पैदा करता है। इससे भी शुभ भावनाओं में कमी आती है। ५. मैं पन का भाव भी शुभ भाव को समाप्त करता है। ६. अपनी चेकिंग न कर दूसरों की आलोचना करना अवगुण देखते रहना यह भी शुभ भावनाएं कम कर देता है।

२.शुभ भावना,शुभ कामना कैसे रहे—उसकी युक्तियां

१. सर्व प्रथम पास्ट को पास्ट करें, बीती को बीती करें। दूसरे की भूलों को, कमियों को भुला दें। ऐसे बन जाएं कि दूसरों की कमियों की अविद्या हो जाए। २. बीती सो बीती करने के लिए ड्रामा का पाठ पक्का करें। जो हुआ वह ठीक हुआ इस धारणा को अपनाएं इसके लिए विशेष योगाभ्यास कर बल भरें। ३. सर्व के प्रति मित्रता भाव को अपनायें । सहयोग दें और सहयोग लें । ४. दूसरों की भूल को अपनी भूल समझें। अपने परिवार के सदस्य की भूल फैलाएं नहीं परन्तु उसे निवारण करने में सहयोग दें। ५. देवता बने, दाता बनें। सर्व को सत्कार दें। स्व परिवर्तन में पहले मैं और मान, पद या आगे बढ़ाने में पहले आप, ऐसी धारणा रखें। ६. हम सबका आपसी ऐसा व्यवहार हो कि सब हमें आशीर्वाद दें। बाप समान बनें।

सन्तुष्टता के तीन सर्टीफिकेट

१. सेवा में सन्तुष्टता २. स्वयं से सन्तुष्टता ३. ब्राह्मण परिवार की सन्तुष्टता

सेवा में किस आधार से सन्तुष्टता का सर्टीफिकेट ले सकते हैं?

१. मधुरता, निर्माणता, सरलता और सत्यता से । २. निःस्वार्थ सेवा, सेवा के रिटर्न की इच्छी न हो, कच्चा फल खाने की इच्छा न हो। ३. श्री मत के आधार पर वा निमित्त बनी हुई बहिनों की राय प्रमाण सेवा करने से सेवा में सन्तुष्टता रहती है। ४. सेवा साधनों के आधार पर नहीं, साधना के आधार पर हो। ५. सेवा का प्रसाद बांटते रहें अर्थात् जो-जो विशेषता जिसमें है, सर्व को सहयोगी बनाने से सेवा में सन्तुष्टता रहती है। ६. सेवा में सदा रेस करनी है न कि रीस

२. स्वयं से सन्तुष्टता का आधार क्या है?

१. एक बल, एक भरोसा, बाप में अटूट निश्चय और अटूट लव हो। सर्व सम्बन्धों का रस और सर्व प्राप्ति एक बाप से होने के कारण तृप्त आत्मा होने से सदा सन्तुष्ट रह सकते हैं। २. ड्रामा पर अटल विश्वास होने से, हर आत्मा के पार्ट को और अपने पार्ट को भी साक्षीपन की सीट पर स्थित हो देखने से सदा सन्तुष्ट रह सकते हैं। ३. श्रीमत पर कदम-कदम चलने से, फालो फादर करने से सदा सन्तुष्ट रह सकते हैं। ४. स्वमान में स्थित रहने का संस्कार होने से, सदा मान ज्ञान नाम की इच्छा से परे रहने से सदा सन्तुष्ट रह सकते हैं। ५. दातापन के संस्कार हों लेने की इच्छा न हो तो सदा सन्तुष्ट रह सकते हैं। ६. सहनशक्ति, समाने की शक्ति, स्व परिवर्तन की शक्ति, महसूसता की शक्ति होगी तो सदा सन्तुष्ट रह सकते हैं। ७. अपनी दिनचर्या यज्ञ के नियम अनुसार होगी तो सदा स्वयं से सन्तुष्ट रह सकते हैं।

३. ब्राह्मण परिवार की सन्तुष्टता

१. पहले आप का पाठ पक्का हो। २. सर्व को सम्मान देते रहो, सम्मान दो, सम्मान पाओ। ३. सर्व का स्नेही सहयोगी बनें । ४. सर्व के प्रति रहमदिल भावना, शुभ भावना, शुभ कामना रखें। ५. मैं और मेरे पन को छोड़ अपनापन, अपने ईश्वरीय परिवार की सच्ची भावना रखें। ६. हरेक की विशेषता देख आगे बढ़ें और बढ़ायें ७. हंस बुद्धि बन सदा सबसे गुण ग्रहण करें, अवगुण न देखें, न वर्णन करें, न चित पर रखें। ८. स्वयं में फेथ, बाप में फेथ, ईश्वरीय परिवार में फेथ हो। ९. सर्व के प्रति सम दृष्टि हो — गरीब हो या साहूकार। पढ़ा हुआ हो वा अनपढ़ा हो, परन्तु बाबा का बच्चा है यह भावना हो। १०. लव और ला का सदा बैलेन्स रहे। जैसा कर्म हम करेंगे, मुझे देख सब करेंगे। यह महामंत्र सदा याद रहे। तब ब्राह्मण परिवार की सन्तुष्टता का सर्टीफिकेट प्राप्त कर सकेंगे।

ब्राह्मण परिवार के प्रति बाप दादा की धारणायुक्त शुभ आशायें कौन सी हैं?

१. मेरा हरेक बच्चा पास विद आनर बन जाये। २. हरेक बच्चा बाप समान बन जाये। ३. लाइट हाउस माइट हाउस बन सबको रास्ता दिखाये, अन्धों की लाठी बने। ४. विश्व के शो केस में शो पीस बने, जिसको देख बाप दादा को फालो कर एक्जैम्पुल बने। ६. श्रीमत पर तन-मन-धन से भारत को स्वर्ग बनाने की सेवा में मददगार बने।

कुमारियों के प्रति बापदादा की आशायें

१. एक-एक कुमारी १०० ब्राह्मणों से उत्तम है, तो कम से कम १०० ब्राह्मणों को तैयार करे। २. मम्मा के समान बनें। भीष्म

पितामह जैसे को भी ज्ञान बाण मारने योग्य बनें। ३. कुमारी वह जो सेवा की जिम्मेवारी का ताज धारण करे, २१ कुल का उद्धार करे।

टीचर्स प्रति बापदादा की आशायें

१. सेवा की खूब धूम मचायें। २. बहुतों को आप समान बनायें। ३. अनेक स्थानों पर सेवा अर्थ चक्कर लगाती रहें। ४. एक-एक टीचर १०-१० सेवा संस्थान सम्भाले। ५. टीचर ललकार करने वाली शेरनी शक्ति हों।

माताओं के प्रति बापदादा की आशायें

१. मातायें अपना संगठन तैयार करें। २. ग्रोब बनाकर गरमेन्ट को दें। सेवा के मैदान में आयें। ३. पवित्रता के लिए अपने अधिकार मांगे। ४. मातायें नष्टोमोहा बन शक्ति स्वरूप बनें। ५. मातायें यज्ञ माता बन बेहद कार्य में सहयोगी बनें। ६. हद की माता के बजाए, जगत माता बन जगत की आत्माओं के कल्याण के निमित्त बनें।

प्रवृति वालों के प्रति बापदादा की आशायें

१. घर गृहस्थी में रहते हुए कमल फूल समान जीवन बनायें। २. ट्रस्टी बनकर रहें। परमार्थ और व्यवहार दोनों का बैलेन्स रखें। ३. शिवबाबा को अपना वारिस (बच्चा) बनाकर भविष्य वर्से के अधिकारी बनें। ४. पाण्डव विशालबुद्धि बन यज्ञ का मददगार बनें। और यज्ञ की रक्षा करें।

कुमारों प्रति बापदादा की आशायें

१. कुमारों का सतोगुणी (पवित्र) रहने का यादगार सनंतकुमार के रूप में है। तो कुमार अर्थात् पवित्र। अपवित्रता का संकल्प भी उत्पन्न न हो। इस दुनिया की बातों से, सम्बन्धों से न्यारे और दैवी परिवार तथा बापदादा के प्यारे बनें। २. माथा से इनोसेन्ट और ज्ञान से सेन्ट बनें। ३. कुमार अर्थात् सदा समर्थ। कुमार जीवन अर्थात् मुक्त जीवन। किसी भी बंधन में न बंधें। ४. कुमार अर्थात् विल पावर वाले। हर संकल्प हर सेकेण्ड विल करके चलने वाले। ५. कुमारों को अपना साथी एक बाप को बनाना है, अपने को अकेला नहीं समझना है।

संगठन के प्रति बापदादा की आशायें

१. संगठन एकमत एकरस हो। स्नेह और एकता का सूत्र सदा अटूट रहे। २. संगठन में बड़ों के प्रति रिगार्ड, छोटों के प्रति प्यार बना रहे। ३. सदा "पहले आप" का दिव्य संस्कार रहे। ४. संगठन में एक दो के प्रति फेथ (विश्वास) हो। ५. संगठन में एक दो की विशेषताओं को देख, सर्व की विशेषता कार्य में लगायें। ६. संगठन में एक दो की कमियों का वर्णन कर फैलायें नहीं। दूसरे की कमी अपनी कमी समझ समा लें।

स्व सेवा और विश्व सेवा का बैलेन्स

स्व सेवा व विश्व सेवा का आपस में गहरा सम्बन्ध है। केवल एक सेवा के द्वारा पूर्ण उन्नति व सफलता नहीं, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विश्व सेवा (सर्विस) में आने वाले पेपर जैसे कि मान-अपमान, निंदा-स्तुति, ग्लानि, विरोध आदि स्वउन्नति के मापदण्ड हैं। इन पेपरज के द्वारा हमें अपनी आन्तरिक स्थिति का बोध होता है। स्व सेवा के द्वारा ही हमारे ज्ञान की तलवार में योग का जौहर भरता है। स्वसेवा से प्राप्त शक्तियां व गुण—अन्तर्मुखता, गम्भीरता, हर्षितमुखता, सहनशक्ति आदि के द्वारा हमें विश्व सेवा में सफलता मिलती है और सेवा की सफलता के द्वारा जो आन्तरिक खुशी प्राप्त होती है वह पुनः नई-नई सेवा करने के लिए प्रेरणा देती है। अतः स्व सेवा और विश्व सेवा दोनों की ओर ही पूर्ण रीति से ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। दोनों का बैलेन्स ही हमारी अन्तिम मंजिल को समीप लाता है। इस बैलेन्स को बनाये रखने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देते रहें

१. स्वउन्नति व विश्व सेवा का ईश्वरीय बजट बनायें। स्वउन्नति का बजट अर्थात मुझे अपने संकल्प, वाणी, कर्म व समय की शक्ति को कहां व कैसे काम में लगाना है। सेवा का बजट अर्थात् सर्व आत्माएं व प्रकृति (तत्वों) को मुझे शान्त व सुखी बनाना है। विश्व की हर आत्मा मुझसे कुछ न कुछ प्राप्त करके ही जाये। २. मुझे बाप समान बनना है तथा हम सैम्पुल हैं व शोकेस में हैं—यह सदा बुद्धि में रहें। साथ-साथ जैसा कर्म मैं करूंगा मुझे देख और करेंगे। ३. न्यारे-पन व प्यारे-पन का बैलेन्स हो। यह होगा उपराम स्थिति से। और इसका साधन है फुल साधनों (सर्विस में मिले हुए) के बीच रहते हुए भी अपनी साधना (स्वसेवा) में रहने से। ४. अपनी अवस्था की कीमत पर सेवा न करें। जिस सेवा से मेरी अवस्था में गिरावट आती है उसे न करना बेहतर है। वह सेवा, सेवा नही हैं। ५. कार्य का पूरा बंटवारा कर दें। अपने सर्विस साथियों की योग्यता पर मुझे पूरा विश्वास हो। सारा कार्य स्वयं ही करने का प्रयत्न न करें। इससे दोनों प्रकार की सेवा के लिए काफी समय मिल जायेगा। ६. स्व सेवा के समय "पहले मैं" पाठ तथा विश्व सेवा के समय "पहले आप" का पाठ पक्का हो। अपने को आफर करने से बापदादा की आफरीन सदा मिलती है। ७. दूसरों की सेवा व सफलता देख केवल प्रसन्न ही न हों बल्कि अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करें। इससे दूसरे का उमंग उत्साह तो बढ़ेगा ही, साथ-साथ उसकी भावना भी हमारी तरफ बढ़ेगी। यह सूक्ष्म रूप से हमारी स्व सेवा व विश्व सेवा को आगे बढ़ाने में मदद करेगी। ८. सहयोग लेने की आशा न रख सहयोग देते जायें तो

दूसरों से सहयोग स्वतः ही मिलता जायेगा। ९. सेवा के क्षेत्र में रेस करें, रीस नहीं। कम्पीटीशन हो पर हैल्दी हो। १०. सेवा के क्षेत्र का विस्तार होने के साथ-साथ सेवा के कार्यों का, एरिया का, सेवा के प्रकारों का बंटवारा प्रशासन की दृष्टि से आवश्यक है, या यह सब होता जायेगा पर यह ध्यान रहे कि इन सबका चाहे बंटवारा हो पर दिलों का बंटवारा कभी भी न हो। ११. कोई भी प्रकार की सेवा हो, लक्ष्य यह रखना है कि मुझे सर्व के दिलों को जीतना है। भविष्य पद का आधार सेवा व सेवाकेन्द्रों का विस्तार नहीं बल्कि मैं कितना दूसरों के दिलों पर राज्य करता हूं इस पर है। मुझे दूसरे मेरी लौकिक या अलौकिक पोजीशन के कारण रिगार्ड देते हैं या दिल से। जितना मुझे दूसरे दिल से रिगार्ड देंगे उतना ही ऊँच पद का मैं अधिकारी बनूंगा। १२. कभी भी किसी को तिरस्कार की दृष्टि से न देखें। यज्ञ के एक-एक वत्स को अवश्य ही भगवान ने उसकी किसी न किसी विशेषता के कारण ही चुना है। अतः उसकी विशेषता को परख उसे सेवा के कार्य में लगा दें। १३. प्रतिदिन चार्ट लिखना - यह स्व सेवा व विश्व सेवा का बैलेन्स रखने का एक उत्तम साधन है। १४. प्रतिदिन अमृतवेले स्व सेवा व विश्व सेवा के लिए एक लक्ष्य निर्धारित करें। सारे दिन में समय प्रति समय उसे स्मृति में लाते रहें। इससे उस दिन के निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करना सहज हो जायेगा तथा बैलेन्स स्वतः बना रहेगा। १५. वैसे तो इस बैलेन्स को बनाये रखने के लिए सभी दिव्य गुण व शक्तियां सहयोगी हैं पर विशेष रूप से निर्माणचित, गुणग्राही दृष्टि तथा सर्व के प्रति कल्याण की भावना—इनकी ओर विशेष ध्यान से यह कार्य सहज हो जाता है।

संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि सारा दिन खेल अटेन्शन का है। जितना अपने ऊपर अटेन्शन उतना अधिक बैलेन्स। ¤

रूहानियत की खुश्बू से सफलता

जिस प्रकार सर्दी व गर्मी से बचने के लिए उन से सम्बन्धित साधनों का प्रयोग करते हैं अथवा बरसात से बचने के लिए (वाटरप्रूफ) बरसाती आदि का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार माया के विघ्नों से बचने के लिए रूहानियत की अथवा अष्ट शक्तियों रूपी विघ्न प्रूफ कवच को प्रयोग करने से अथवा धारण करने से ही विघ्न प्रूफ बन पायेंगे। विघ्न तो अनेक प्रकार से आयेंगे किन्तु योगी का कर्तव्य है वह सदैव रूहानियत की खुश्बू फैलाता रहे।

जिस प्रकार कहावत भी है कि.....

"संत न छोड़े संतई, कोटिक मिले असंत,
मलय भुंवगहि बेधिया, शीतलता न तजंत"

जिस प्रकार सर्प चन्दन के वृक्ष पर लिपटे हुए रहते हैं फिर भी वृक्ष अपनी शीतलता अथवा खुश्बू को देना नहीं छोड़ता अथवा संत अपनी संतई कर्त्तव्य पर अटल रहता है, इसी प्रकार सच्चे योगी का कर्त्तव्य है कि वह रूहानियत की खुश्बू सदैव देता रहे तब ही विघ्नों से घबरायेंगे नहीं और उनके प्रभाव से मुक्त रहेंगे। क्योंकि योगी सदैव अपने रूहानियत रूपी अलंकारों से युक्त होगा और अंहकार अथवा देह-अभिमान से मुक्त होगा अथवा देही अभिमानी स्वतः ही विघ्नों से मुक्त होगा। जैसे एक सपेरा अपने वीना को सदैव अपने साथ रखता है और वीना के मधुर संगीत द्वारा बड़े-बड़े विषैले सर्पों को भी वश में कर लेता है इसी प्रकार 'बाबा-बाबा' की मधुर वीना दिल में बजती रहने से माया के विघ्नों रूपी सांपों के प्रभाव से मुक्त रहेंगे। जब हम अपने योगीपन के कर्तव्यों को पालन करते, रूहानी वृत्ति को अपनाते, रूहानी दृष्टि, कल्याणकारी वृत्ति और गुणग्राही हो कर रहते तो विघ्न भी हमारी रूहानियत की खुश्बू के आगे प्रभावहीन हो जाते।

ब्र० कु० शिवकुमार पान्डव भवन, दिल्ली

अंजार में 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' सम्मेलन का उद्घाटन कर रहे हैं नगरपालिका के उपप्रमुख भ्राता राजु भाई जी तथा ब्र० कु० नलिनी बहिन ।

जीवन सुरक्षा कवच—सहनशीलता

"सहन करते हैं वहीं जिनमें शील होता है,
हिंसक होना बेशील का प्रतीक होता है।
ठोकर खाके ही पत्थर सालिगराम बनता है,
सहन करके व्यक्ति महान बनता है।"

सहनशीलता का अर्थ है—विपरीत परिस्थितियों में अपनी मानसिक स्थिति को संतुलित रखते हुए मन में दुख एवं अशान्ति हुए बिना अपने लक्ष्य की ओर सतत् अग्रसर होना तथा दूसरों पर भी सकारात्मक प्रभाव डालना।

आत्मिक स्थिति ही सहनशीलता की जननी है

आत्मिक स्थिति में स्वतः ही सहनशक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। आत्मिक स्थिति में स्थित रहने वाला योगी अपनी रूहानी दृष्टि, कल्याणकारी वृत्ति द्वारा सहज ही दैहिक भेदभावों को मिटाकर भ्रातृत्वभाव का सृजन करके सर्वजन हिताय के कार्यों को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है। राजयोगी राजहंस के सदृश्य संसार रूपी मानसरोवर में विचरण करते हुए गुणरूपी मोती ही ग्रहण करता और अवगुण रूपी कंकड़ पत्थर छोड़ देता है।

सहनशीलता का आधार—स्नेह

सहनशक्ति का आधार स्नेह है जिसके प्रति हमें स्नेह होता है हम उसकी हर बात को सहज ही सहन कर लेते हैं। जो जितना स्नेहमूर्ति होगा उतना ही सहनशील मूर्त होगा। मां का पुत्र से स्नेह होने के कारण ही स्वयं गीले बिस्तर में लेट कर बच्चे को सूखे में लिटाते हुए भी कभी दुख का अनुभव नहीं करती है। योगी के अन्तःकरण में प्यार का अक्षय स्रोत बहने लगता है जिसके कारण वह दूसरों की कमजोरियों व कमियों को सहज रीति से अपने में समाकर सहन कर लेता है और एकरस स्थिति का आनन्द भी लेता रहता है।

सहनशीलता से लाभ

१—सर्व को सन्तुष्ट करने की क्षमता का प्रादुर्भाव

कच्ची मिट्टी का घड़ा भट्ठी में अग्नि की तपन सहन करते-करते जब पक जाता है तो उसमें जल को शीतल करने की क्षमता पैदा हो जाती है और स्वयं ज्वाला का भक्षण करके अनेक प्यासे लोगों को शीतल जल पिलाकर तृप्ति करता है। इसी प्रकार योग अग्नि में तपने से योगी के अंग शीतल और

बी. के. रामबहादुर सिंह,
कानपुर

सुखदायी बन जाते हैं। उसके संकल्प में श्रेष्ठता, वाणी में मधुरता और व्यवहार में सर्व को सन्तुष्ट करने की अद्भुत क्षमता का विकास हो जाता है। इस प्रकार सहनशक्ति द्वारा हम दूसरों को सहज ही सन्तुष्ट कर सकते हैं।

२—श्रेष्ठतम लक्ष्य की प्राप्तिः

सहनशक्ति के सुदृढ़ सोपानों पर चढ़कर हम जीवन के श्रेष्ठतम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। देश की स्वतंत्रता के लिए महाराणा प्रताप को घास की रोटियाँ खानी पड़ीं, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव को फांसी के फन्दे को वरण करना पड़ा। धर्म की स्थापना में भी धर्म स्थापकों को भी बहुत कुछ सहन करना पड़ा। क्राईस्ट को सूली पर लटकाया गया, मोहम्मद साहब को मक्का से पलायन करना पड़ा, गुरु गोबिन्दसिंह के बच्चों को जीवित ही दीवार में चिनवाया गया, महात्मा बुद्ध को अपना राजपाट त्याग करना पड़ा। प्रभु प्रीत की दीवानी मीरा को तो जहर का प्याला ही पीना पड़ा।

३—नकारात्मक वृत्तियों को सकारात्मक बनाना

सहनशक्ति के द्वारा नकारात्मक वृत्तियों को सकारात्मक बनाया जा सकता है। एक बार एक व्यक्ति महात्मा बुद्ध को लगभग आधा घण्टे तक गाली देता रहा। जब रुका तो महात्मा बुद्ध बड़ी विनम्रता के साथ बोले, "हे भाई, यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य को अपनी वस्तु दे परन्तु दूसरा व्यक्ति उसे स्वीकार ही न करे तो बताओ वह वस्तु किसके पास रहेगी? आपने जो कुछ भी मुझे देने की कोशिश की मैंने उसमें से एक भी बात स्वीकार नहीं की, यह सुनकर वह व्यक्ति बड़ा लज्जित हुआ तथा महात्मा बुद्ध का अनुयायी बन गया।

४—तनाव से मुक्ति

सहनशीलता मानव जीवन के लिए सुरक्षा कवच है। आधुनिक समस्या एवं संघर्ष प्रधान युग में सहनशक्ति का सर्वत्र ह्रास दिखायी दे रहा है। छोटी-छोटी बातें संघर्ष में बदल कर तनाव और तबाही का कारण बन रही हैं तथा मानव अपने जीवन की अमूल्य निधि शान्ति और सुरक्षा से वंचित होता जा रहा है। सहनशक्ति के द्वारा हम सहज ही तनाव मुक्त जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

५—संकल्प, वाणी, कर्म पर नियंत्रण

सहनशील व्यक्ति चैन से सोता, जागता और घूमता है जबकि क्रोधी व्यक्ति अपने ही अन्तःकरण की ज्वाला में जलता हुआ

विनाश को प्राप्त करता है। सहनशील व्यक्ति न साधारण व व्यर्थ बोल बोलेगा न साधारण कर्म करेगा। क्योंकि वाचा व कर्मण पर उसका नियंत्रण हो जाता है। परिणामस्वरूप वह व्यर्थता से सहज ही मुक्त होकर शुद्ध संकल्पों में रमण कर सकता है।

६—संगठन में सामन्जस्य स्थापित करना

किसी भी संगठन में सहनशीलता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। सहनशील व्यक्ति नाम, मान, शान के आकर्षण में न आकर अपनी सहनशक्ति के द्वारा संगठन में भी सहज रीति से सामन्जस्य स्थापित कर लेता है।

७—सद्भाव और शान्तिपूर्ण वातावरण का निर्माण

सहनशील व्यक्ति के घर का वातावरण भी शान्तिपूर्ण हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी निन्दक के द्वारा की गई निन्दा को सहन नहीं करता है तो उसके मन में निन्दक के प्रति ईर्ष्या, घृणा एवं क्रोध उत्पन्न हो जाता है। उसका मन अशान्ति से भर जाता है। इसके विपरीत सहनशील व्यक्ति निन्दक द्वारा की गई निन्दा व कटु भावों को सहज ही सहन कर लेता है। परिणाम स्वरूप झगड़ा तो समाप्त हो जाता है। साथ ही साथ स्वयं की मानसिक शान्ति और खुशी में भी कमी नहीं आने पाती है।

८—सर्व के दिलों में जीना

सहन करना अर्थात् मरना या डरना नहीं बल्कि सबके दिलों में स्नेह से जीना। सहन करना अर्थात् रहम करना। जब कोई व्यक्ति अनुचित व्यवहार करता है तो हमें समझ लेना चाहिए कि वह अज्ञान या मनोविकारों के परवश होकर कार्य कर रहा है। अतः हमारे मन में उस बेचारे के प्रति कल्याण एवं तरस की भावना आनी चाहिए न कि उसे नीचा दिखाने या बदला लेने की। क्या हमें उससे बदला लेने के लिए घृणा, द्वेष, क्रोध करके घृणा, द्वेष एवं क्रोध की अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिए? क्या हम उस अपराधी को गुरु मानकर उसके अनुयायी बनकर उसके जैसा ही व्यवहार करने लगे?

९—महान बनना

सहनशक्ति मानव को महान बना देती है। पत्थर के टुकड़े नदी की लहरों की ठोकर खाते-खाते सालिग्राम बनकर पूज्यनीय बन जाते हैं, छैनी और हथोड़े की चोट सहन-करते पत्थर मूर्ति बन जाते हैं। उसी प्रकार सहनशील मानव कठिनाइयों और विघ्नों को सहन करता हुआ महान बन जाता है।

क्षमता एवं शक्ति की कसौटी सहनशीलता है जो जितना अधिक सहन करता है वह उतना ही अधिक महान और शक्तिशाली बन जाता है। यदि जीवन की सार्थकता महानता है तो महानता की कसौटी सहनशीलता है। मां एवं धरती मां सबसे अधिक सहन करती है इसलिए तो उन्हें स्वर्ग से भी अधिक महान माना जाता है। ठीक ही कहा गया है:-

जननी जन्भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

¤

माऊँट-आबू: बुज़र्ग माताएं तथा अन्य, ब्र० कु० दादी प्रकाशमणि तथा अन्य ब्र० कु० शिक्षिकाओं के साथ।

हमारे नये सेवा स्थान

परमपिता शिव परमात्मा का इस धरा पर दिव्य अवतरण हुआ है, यह संदेश सभी आत्माओं को देने के लिए अनेक प्रकार के ईश्वरीय सेवा के साधन हम आत्माओं के पास हैं। उन सेवाओं के साधनों का प्रयोग हम जहाँ करते हैं वह है 'सेवास्थान'। साधनों द्वारा संदेश प्राप्त करके फिर ज्ञान-योग की साधना करने के लिए जहाँ विशेष पुरुषार्थ हो सकता है वे है हमारे सेवा-केन्द्र। उन सेवाकेन्द्रों का विस्तार बहुत है। सिर्फ देश में ही नहीं लेकिन विदेशों में भी उसका बहुत विस्तार है। ३१ दिसम्बर ८८ तक हमारे विभिन्न प्रकार के १८६० सेवाकेन्द्र थे।

विविध प्रकार की सेवाकेन्द्रों की संख्या जैसे बढ़ती है वैसे ही ईश्वरीय सेवा के साधन भी बढ़ते हैं और सेवा करने के स्थान भी बढ़ते हैं।

प्यारे शिवबाबा ने सन् १९८५ से हमें सहयोगी आत्माओं की सेवा करने के लिए विशेष प्रेरणा दी। उसके परिणाम स्वरूप ही "मिलियन मिनिट्स आफ पीस अपील" कार्यक्रम तथा बाद में "सर्व के सहयोग से सुखमय संसार" नामक कार्यक्रम शुरु हुआ। ऐसी सहयोगी आत्माओं की सेवा द्वारा अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ हो रही हैं, जैसे कि संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा "अंतर्राष्ट्रीय शांति दूत" यह पुरस्कार और भी अनेक छोटे-बड़े पुरस्कार भी मिले हैं और मिलते ही रहेंगे।

सहयोगी आत्माएं शिवबाबा के संदेश को पूर्ण से धारण नहीं करेंगी किन्तु इस ज्ञान की कुछेक बातें उनको पसंद आयेंगी क्योंकि वे भी इन बातों की खोज में होते हैं। और इसी कारण शिवबाबा की वे बातें उनको जचती हैं। इसी कारण हमारे ईश्वरीय सेवा में मददगार-सहयोगी बन सकते हैं। इन बातों का विशेष अभ्यास भी उन्हों का है, इसी कारण बहुत उसी ज्ञान की प्वाइंट को समझकर उसी पर विचार सागर मंथन करके तथा अपने अनुभव के आधार पर और प्यारे शिवबाबा की विशेष मदद से विशेष आत्मायें होने के कारण, ऐसी सहयोगी आत्माएँ अनेक प्रकार के नये साधन, सेवा के क्षेत्र में निर्माण कर सकते हैं और नये सेवा स्थान भी बनाने के निमित्त बन सकते हैं। जैसे कि माउंट आबू में आयोजित विविध प्रकार के सम्मेलनों में एक सम्मेलन जो डाक्टर्स और स्वास्थ्य से

बी. के. रमेश
गामदेवी, बंबई

संबंधित वर्ग के मुखियाओं के लिए किया था उसमें गुजरात राज्य के आरोग्य-मंत्री, आरोग्य विभाग के सचिव तथा मुख्य निर्देशक आये थे। योग से अनेक प्रकार की उपलब्धियां होती हैं परंतु इन स्वास्थ्य से संबंधित तज्ञों को, योग का जो स्वास्थ्य से संबंध है, उन बातों में विशेष दिलचस्पी हो यह स्वाभाविक है। उसी कारण स्वास्थ्य मंत्रालय के साथ उनका विशेष संपर्क रहा। फलस्वरूप उन्होंने भी इस योग का रोग के साथ क्या संबंध है, इसी बात विशेष प्रयोग करने के लिए अहमदाबाद तथा गांधीनगर में स्थित शासकीय हस्पतालों में राजयोग का प्रयोग करने के लिए, योग थेरोपी क्लीनिक (Yoga Therapy Clinic) नाम से तीन कमरे देकर के उसमें योग की विधि, विधिपूर्वक सिखाने हेतु इस नये प्रकार की ईश्वरीय सेवा अर्थ नये सेवास्थान का निर्माण करने में मदद की।

ऐसे नये प्रकार के सेवास्थानों में विशेष प्रयोग करके, अनेक आत्माओं को योग का ज्ञान देकर उन्हें शक्ति प्रदान होती है और अनेक मानसिक आदि-आदि प्रकार के रोगी राजयोग द्वारा अपनी व्याधि से मुक्त होते हैं। जब जयपुर में अपना पहला-पहला संग्रहालय का प्रारंभ हुआ तो साकार ब्रह्माबाबा ने अनेक बहन भाइयों को जयपुर में विशेष संग्रहालय देखने के लिए भेजा। म्यूजियम को देखकर बहन-भाई म्युजियम रूपी नये स्थान का परिचय कर सके, उसकी उपयोगिता को समझ सके। आज हमारे देश-विदेश में अनेक संग्रहालय रूपी सेवास्थानों का निर्माण हुआ है। उसी प्रकार हमारे दैवी परिवार के बहन भाइयों का अहमदाबाद में नारायणपुरा से संबंधित सेवाकेन्द्र और गांधीनगर सेवाकेन्द्र-इन नये सेवास्थानों का साक्षात्कार करना चाहिए। जिससे हम सब अपने स्थान पर भी इस प्रकार के नये सेवास्थानों का सहयोगी आत्माओं की सेवा करके, निर्माण करें क्योंकि हस्पताल तो सब छोटे-बड़े शहरों में होते हैं।

इसी प्रकार अन्य नये प्रकार के सेवास्थानों का निर्माण हो सकता है। सर्व के सहयोग से सुखमय संसार कार्यक्रम के अंतर्गत हमारे करनाल सेवाकेन्द्र के द्वारा कैदियों की ईश्वरीय सेवा, वहां की जेलों में की गई। परिणाम-स्वरूप वहां एक भाई को प्यारे शिवपिता का संदेश मिला और अब जेल से छूटने के बाद करनाल सेवाकेन्द्र पर नियमित आता है और अनेक १५-२० नये भाई बहन भी अब शिवबाबा के ज्ञान को प्राप्त कर रहे हैं। जेल में ईश्वरीय सेवा अन्य

अनेक स्थानों पर हो रही है। अब उसी सेवा का विस्तार बढ़ाने से जेल भी शिवबाबा की सेवा अर्थ नये सेवास्थान बन सकते हैं। शिवबाबा के ज्ञान में संस्कारों में परिवर्तन करने की शक्ति है, विकर्म विनाश करने की दिव्य शक्ति है। संस्कार-परिवर्तन करने की दिव्य शक्ति का प्रयोग कैदखानों में रहनेवालों पर अच्छी रीति से हो सकता है-जैसे हस्पतालों में रहनेवाले मरीज शारीरिक या मानसिक व्याधि से पीड़ित हैं उसी तरह आर्थिक व्याधि आदि से पीड़ित चोरी करने वाले या अन्य संस्कारों से पीड़ित बीमार कैदियों के जीवन में आंतरिक परिवर्तन शिवबाबा के ज्ञान-योग की शक्ति से हो सकता है। जेल जो हरेक बड़े शहरों में होती है, इस नये प्रकार की ईश्वरीय सेवा के निमित्त सेवास्थान बन सकते हैं।

आज के युवा अधिकतर विदेश में और भारत में भी बड़े-बड़े शहरों में नये प्रकार की ड्रग्स के व्यसनी बन गये हैं। बंबई विश्वविद्यालय के ४०% छात्र इस व्यसन के शिकार हैं। व्यसनमुक्ति के लिये अनेक प्रकार के उपाय किये गये हैं। परंतु इस क्षेत्र में कार्य करनेवालों का यह अनुभव है कि व्यसनमुक्ति के लिये सबसे बड़ा साधन है मनोबल। दुर्बल मनोबल के कारण व्यसनमुक्त नहीं हो पाते। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्र प्रमुख के परिवार के एक बालक को २ मास तक साधारण उपचार केन्द्र में रखा गया। परंतु बाद में बाहर निकलने के पश्चात् तीसरे दिन ही इसी व्यसन में दुबारा फंसने से उसकी मृत्यु हो गई।

आत्माभिमानी बनाने वाला राजयोग आत्मबल या मनोबल प्रदान करने का सर्वोत्तम साधन है। आज के गुमराह युवक को फिर से सत्य, शांति पूर्वक सुख के रास्ते पर लाने में सर्वश्रेष्ठ मदद दे सकता है। आज की शिक्षा अर्थ प्राप्ति में मददगार है परंतु चरित्र-निर्माण में इतनी मददगार नहीं है। अपना यह ईश्वरीय विश्व-विद्यालय लौकिक दुनिया के विश्व-विद्यालयों को मदद करने में एक लाईट हाऊस की माफिक मदद कर सकता है। अर्थात् लौकिक विश्व-विद्यालय, स्कूल, कालेज अपने नये ईश्वरीय सेवा स्थान बन सकते हैं क्योंकि हरेक वाइस-चांसलर (Vice Chancellor) या शिक्षा मंत्री छात्रों में गिरते हुए चरित्रों से चिंतित है। इसीलिए यदि ईश्वरीय विश्व विद्यालय और लौकिक विश्वविद्यालय के बीच सेतुबंध बंध जाये तो एक दिव्य-चमत्कार हो सकता है। स्कूल-कालेज तो आजकल छोटे-छोटे शहरों में भी हैं। इसलिए हमारे अधिकतर सभी सेवाकेन्द्र इस नये प्रकार के सेवास्थानों के जन्मदाता बन सकते हैं।

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने मुझे कहा कि वह यह सिद्ध करने का पुरुषार्थ कर रहे हैं कि ज्ञान और विज्ञान एक सिक्के (Coin) की दो बाजू (Sides) हैं। ज्ञान-विज्ञान के सहयोग से ही नई सृष्टि का सर्जन हो सकता है। सर्जनहार सर्जन शक्ति का अविष्कार और उनके प्रयोग के लिए अध्यात्म ज्ञान का, योग और प्रकृति का विज्ञान के प्रयोग के संतुलित स्वरूप के प्रतीक अर्थात् नये सेवास्थान या प्रयोग शालाओं का निर्माण, विज्ञान के क्षेत्र के अधिकारी वैज्ञानिक वर्ग की ईश्वरीय सेवा की जरूरत है। विज्ञान ने अणुशक्ति का निर्माण किया तो आध्यात्मिक ईश्वरीय ज्ञान ने आत्मिक शक्ति का निर्माण या तो कहें अनुभूति कराई। भक्तिमार्ग में रही अनेक प्रकार की अँध-श्रद्धा को दूर करने के लिए शिवबाबा ने हमें ईश्वरीय ज्ञान को वैज्ञानिक दृष्टि से सिखाया। भौतिक वैज्ञानिक अध्यात्म-ज्ञान से दूर रहता है उसी प्रकार अंध-श्रद्धा चमत्कार आदि की बातों से भी दूर रहता है। परंतु अब अगर हम उन्हें यह शिवबाबा का साईंटिफिक (Scientific) ईश्वरीय ज्ञान का परिचय दें तो जरूर वैज्ञानिक इस आध्यात्मिक पंथ के राही बन सकते हैं। नये विश्व में भी विज्ञान के उपकर्णों की जरूरत है, इसीलिये उनका सहयोग भी जरूरी है। नये विश्व में जेल, हस्पताल नहीं होंगे परंतु विज्ञान अपने नये स्वरूप में अवश्य वहां उपस्थित होगा। ईश्वरीय शक्ति, आत्मिक शक्ति तथा प्रकृति की शक्ति का त्रिवेणी संगम, यह संगमयुग की सबसे बड़ी जरूरत है। विश्व परिवर्तन के कर्म में प्रकृति का बहुत बड़ा पार्ट है। सतोप्रधान प्रकृति ही हम सबकी सतयुग में सबसे बड़ी मददगार स्थूल शक्ति है। सतयुग, सतोप्रधान आत्मिक एवं प्रकृति की शक्ति का प्रतीक है। दोनों के सतोप्रधान स्वरूप के कारण ही तो यह सृष्टि स्वर्ग है। विज्ञान संपूर्ण सुख के साधनों का निर्माण करे यह हम सबकी अभिलाषा है।

वैज्ञानिक आज की सृष्टि का स्थूल प्रचुर प्रदूषण दूर करने में व्यस्त हैं। हम आध्यात्मिक ज्ञानी-विज्ञानी आज की आत्माओं में प्रवृत्तमान मन + बुद्धि तथा विचारों में जो विकारों रूपी प्रदूषण (Pollution) है उसको दूर कर रहे हैं। विचारों का प्रदूषण भी बहुत बड़ी बीमारी है जिसके कारण अनेक प्रकार के युद्ध (Wars) आदि हुए। अंतिम विश्व-युद्ध भी उसी का एक परिणाम होगा।

इस प्रकार विज्ञान की प्रयोगशाला हमारे नये ईश्वरीय सेवास्थान बन सकते हैं जिस द्वारा अनेक प्रकार की नई-नई उपलब्धियां वैज्ञानिक पा सकते हैं और उसी प्रकार आज की आकाशवाणी तथा दूरदर्शन हैं। दूरदर्शन को दिव्य दर्शन रूपी ईश्वरीय सेवा का स्थान बना सकते हैं। इस प्रकार विवेकशून्य आनंद जो आज के कलियुग का चिन्ह है वह बदल जायेगा और आनंद के सागर परमात्मा से प्राप्त

दिव्य आनंद की अनुभूति विश्व कर पायेगा। आकाशवाणी एक अमृतवाणी रूपी सेवाकेन्द्र बन जायेगी। इस तरह आकाशवाणी (Radio अमृतवाणी करने का निमित्त स्थान बन सकता है। हमारे गीत, नाटक आदि इस नई सेवा के निमित्त कारण या उपकर्ण बन सकते हैं।

आज के व्यापार करनेवाले व्यापारियों के सहयोग से हम नये विश्व के अर्थशास्त्र का, आज के विश्व को आक्षात्कार करा सकते हैं। और आज के विश्व में सर्वव्यापी भ्रष्टाचार दूर कर सकते हैं। आज का व्यापारी स्थूल व्यापार और कमाई करता है परंतु जैसे विश्व प्रसिद्ध बादशाह सिकंदर खाली हाथ गया और यह संदेश सबको देने का निमित्त बना उसी प्रकार सच्ची कमाई के यह ज्ञान-योग सेन्टर्स हैं अर्थात यह नये सेवास्थान सभी आत्माओं को सच्ची कमाई करानेवाला मनोव्यापार की चेतना का स्वरूप होंगे।

कला के क्षेत्र के कलाकार अगर यह ईश्वरीय ज्ञान ले लें तो सच्चे कल के कलाकार बन सकते हैं क्योंकि सतयुगी देवी-देवताएं १६ कला संपूर्ण हैं। चित्र से चरित्र बनाने वाला, लक्ष्य देकर लक्षण देने वाला, कला के द्वारा कल के होनहार १६ कला संपूर्ण मानव (देवताओं) का निर्माण करनेवाला यह ईश्वरीय ज्ञान है। परमपिता वह चित्रकार है जो रंग बिना रंग भरे, आँख बिना सब कुछ देखे—ऐसे सर्वशक्तिमान परमात्मा की उत्कृष्ट कला का परिणाम है-स्वर्ग। यह विश्वरूपी रंगमंच पर चलने वाला, बेहद के नाटक का वह निर्माता, दिगदर्शक, मुख्य कलाकार है। तो ऐसे सर्वश्रेष्ठ चित्रकार परमात्मा का परिचय देनेवाली रंगशाला हमारे नये सेवाकेंद्र बन सकते हैं।

इसी प्रकार हम आत्माएं पुरुषार्थ करें तो हरेक प्रकार के व्यवसाय और व्यावसायिक हमारे नये सेवास्थान बन सकते हैं। ऐसे नये सेवास्थानों के निमित्त जन्मदाता बनने का सौभाग्य रूपी वरमाला लेकर भाग्यविधाता खड़ा है, आह्वान कर रहा है और उसका मीठा स्वर-गुंजन हमें प्रातःकाल के योग में सुनने में आता है। कहता है उठो, जागो, पुरुषार्थ करो और ऐसे नये सेवास्थानों का जन्मदाता बनो । अतः हम सब १९८९ का यह वर्ष , नये प्रकार के सेवास्थानों का उद्गम करने में निमित्त बनें।

जबलपुरः आध्यात्मिक प्रदर्शनी के उद्घाटन के पश्चात् कलेक्टर भ्राता सरदार सिंह डंगस, ब्र० कु० सरोज तथा अन्य शिव बाबा की याद में खड़े हैं।

मन-वशीकरण मन्त्र

"मनजीते जगजीत" यह कहावत जग प्रसिद्ध है लेकिन आज तक कोई अपने मन को जीतकर जगजीत नहीं बन सका। और ही मुष्यात्माएँ मन से हार कर अनेक मानसिक रोगों के शिकार बन गये और आशंकाओं के भंवर जाल में फंस गए,तो कभी गहन निराशा की खाई में गिरते गए। जिससे वे स्वयं को जिन्दा होते हुए भी मृतक अनुभव कर रहे हैं। इसलिए आत्मोन्नति के लिए स्वयं के मन पर जीत पाने का पुरुषार्थ करना नितान्त आवश्यक है।

आज अपने कमरे में मायूस होकर बैठे हुए मधु के चेहरे पर दुख और व्यथा की कालिमा छाई हुई थी। उसकी बुझी आँखें स्पष्ट कह रही थीं जैसे कि उसके ऊपर दुखों का पहाड़ गिरा हुआ है। इतने में उसका परम हितैषी मित्र राजयोगी मनोज कमरे में प्रवेश करता है।

मनोज-क्यों क्या बात है मधु, आज इतनी चेहरे पर उदासी क्यों?

मधु-(खिन्न से)-क्या बताऊँ मनोज भैया, मन बहुत परेशान रहता है। मेरा मन होते हुए मेरी मानता नहीं, मैं जैसे कि उसका गुलाम हूँ। अपनी मर्ज़ी से मुझे जहाँ-तहाँ घसीटता रहता है।

मनोज-(गंभीरता से)-हाँ मधु, मन तो हवा जैसा चंचल है, कभी स्थिर नहीं रहता है।

मधु-भैया,मैं अपने मन से बहुत संत्रस्त हूँ, कृपया आप मुझे ऐसा कोई मन्त्र बताइए जिससे मैं उसपर पूरा नियन्त्रण कर सकूँ।

मनोज-क्यों, आपको अभी तक किसी ने कोई मन्त्र नहीं बताया?

मधु-(उदासीनता से)-मनोज भैया, एक बार किसी गुरु ने मुझे कानों में मन्त्र दिया था, लेकिन उस मन्त्र के जाप से मेरा मन वश तो नहीं हुआ और भी भटकने लगा

मनोज-मधु, मन को जीतना कोई सहज बात नहीं, मन तो बेलगाम घोड़े जैसा है।

मधु-सचमुच मनोज भैया, बेलगाम घोड़े पर बैठने वाले का जो हाल होता है वैसे ही मेरा हाल हो चुका है।

मनोज-मधु, मन को महात्माओं ने पागल हाथी की संज्ञा दी है। जैसे पागल हाथी को काबू करना कठिन है वैसे मन को भी काबू रखना बहुत मुश्किल है।

मधु-भैया, अपने मन में कितने प्रकार के संकल्प चलते हैं और उनका आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है?

ब्र० कु० आत्मप्रकाश, आबू पर्वत.

मनोज-मन में मुख्यतः ३ प्रकार के संकल्प चलते हैं।

१. पवित्र संकल्प २. अपवित्र संकल्प ३. व्यर्थ संकल्प

पवित्र संकल्प से आत्मा को शक्ति मिलती है, अपवित्र संकल्प से आत्मा की बहुत शक्ति नष्ट होती है और व्यर्थ संकल्पों से धीरे-धीरे शक्ति खर्च होती रहती है जिससे आत्मा कमजोर बनती है।

मधु-मनोज भैया, कमजोर आत्मा को शक्तिशाली बनाने के लिए कौन सा उपाय है?

मनोज-उसके लिए परमात्मा शिव ने "मन-वशीकरण मन्त्र" बताया है जिसको अपनाने से खोई हुई शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

वह मन - वशीकरण मन्त्र है "मनमनाभव"

मधु-इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ क्या है?

मनोज-"मन्मनाभव" अर्थात् परमात्मा की याद में मन को मनाएँ या रिझाएँ, जिससे हमें असीम आनन्द की तथा ईश्वरीय शक्तियों की प्राप्ति होती है। मन को सदा परमात्मा की याद में व्यस्त रखें जिससे अपवित्र और व्यर्थ संकल्प न आएँगे।

मधु-भैया, ये तो आपने बहुत अच्छी बात सुनाई, मैं भी कभी भगवान की याद आँखें बंद करके करता हूँ तो मेरा मन काबू में नहीं रहता, यहाँ-वहाँ, जहाँ-तहाँ मत पूछो कहां-कहां चक्कर लगाता रहता है, ऐसा क्यों होता है?

मनोज-मधु, वास्तव में परमात्मा को आँखे बन्द करके याद नहीं किया जाता, वह तो अपना पिता है। क्या पिता को याद करने के लिए आँखें बन्द करनी पड़तीं? वास्तव में इन स्थूल नेत्रों के बजाय बुद्धि रूपी नेत्र से जो हम देखते हैं, विशेष मन उसपर सोचता है।

मधु-इसका मतलब उपरोक्त मन्त्र में टिकने के लिए बुद्धि रूपी नेत्र को परमात्मा पर एकाग्र करना आवश्यक है। लेकिन भैया बुद्धि वहाँ लम्बे समय तक एकाग्र नहीं रहती। उसका क्या कारण है?

मनोज-क्योंकि हमारी बुद्धि कमजोर हो चुकी है।

मधु-बुद्धि कमजोर क्यों हो गई?

मनोज-द्वापर युग से हमारी बुद्धि देह और देह के सम्बन्धियों के पीछे यूँ ही भटकती रही है जिससे बुद्धि की शक्ति का पतन हुआ। अभी हमें इस संगमयुग में पुनः बुद्धि को शक्तिशाली बनाना होगा।

मधु-भैया, उसके लिए हमें कौन-सा पुरुषार्थ करना होगा?

मनोज-एकान्त में बैठकर शिव परमात्मा को देखते रहने का अर्थात् एकाग्रता को बढ़ाने का अभ्यास करना ज़रूरी है। लेकिन इसमें माया कभी विघ्न रूप भी बन सकती है, क्योंकि माया सबके पहले वार बुद्धि पर ही करती है।

मधु-ऐसा क्यों भैया?

मनोज-क्योंकि बुद्धि रूपी सूक्ष्म तार से हमें सर्वशक्तिमान परमात्मा से शक्तियाँ मिलती हैं। माया दुश्मन उसी तार पर वार करके (Connection) तुड़वाने पर तुली रहती है।

मधु-मनोज भैया, माया हमारी दुश्मन क्यों बनी है?

मनोज-दुश्मन अर्थात् मन को दूषित करने वाला, तो माया ने विकार रूपी विष मन में घोल दिया। वास्तव में अभी अपने मन रूपी पेटी में ५ विकार रूपी ज़हरीले नाग हैं। वो खतरनाक नाग आत्मा पर सदा डंक मारते रहते हैं जिससे आत्मा विषैली अर्थात् विकारी बन चुकी है।

मधु-भैया, इन जहरीले नागों को नष्ट करने का क्या कोई उपाय नहीं है?

मनोज-हां है, इस 'मन्मनाभव' जादू के मन्त्र का अजपाजाप करने से अर्थात् शिव परमात्मा की याद से योगाग्नि उत्पन्न होती है जिसमें ये नाग भस्म हो जायेंगे। उनका नामोनिशान मिट जायेगा।

मधु-भैया, ये दुनिया तो माया की दुनिया है, तो माया से बचकर रहने का क्या उपाय है?

मनोज-इसी योगाग्नि को निरन्तर जलाकर रक्खें तो माया वार नहीं कर सकेगी। सदा याद रक्खें-

जहाँ होगी योग की ज्वाला, वहाँ न करेगी माया हमला।

आपने कभी सुना होगा कि जब ऋषि-मुनि कठिन तपस्या करने के लिए जंगल में जाते थे तो साधना में कोई विघ्न न पड़े इसलिए चारों ओर अग्नि जलाकर बीच में बैठकर, योग साधना करते थे ताकि कोई हिंसक प्राणी उनपर वार न करे। क्योंकि हिंसक प्राणी अग्नि से ही डरते हैं। ऐसे ही योगाग्नि से माया डरती है।

मधु-अगर किसी कारणवश योगाग्नि बुझती है, उस समय हम माया से कैसे बचकर रहें?

मनोज-दुश्मन तो वार करेगा ही, लेकिन उसके वार का प्रभाव आत्मा पर न पड़े इसलिए हमें ईश्वरीय नशे का कवच (armour) पहन कर रखना परमावश्यक है। क्योंकि ईश्वरीय नशे का प्रभाव आत्मा पर होने से दुनियावी अर्थात् माया का प्रभाव नहीं पड़ सकता।

मधु-भैया, माया के वार से स्वयं को बचाकर रखना वास्तव में बुद्धिमानी है।

मनोज-हां, इसलिए ही तो संसार में सबसे बुद्धिवान राजयोगी आत्माएँ हैं

मधु-वो भला कैसे?

मनोज-क्योंकि राजयोगियों के पास स्वयं के मन और बुद्धि को माया-दुश्मन से बचाकर रखने की और साथ ही साथ अपनी बुद्धि को सर्वशक्तिमान परमात्मा पर एकाग्र रखने की चतुराई होती है इसलिए वो ही सबसे बड़े बुद्धिमान कहलाते हैं।

मधु-बात तो आपकी बिल्कुल सत्य है, लेकिन जब हम योग-साधना के लिए बैठते हैं उस समय वश न हो तो क्या करें?

मनोज-विशेष उस समय मन के बजाए बुद्धि पर ध्यान दें और देखें कि इस समय बुद्धि रूपी नेत्र कहाँ एकाग्र है, जरूर वो परमात्मा के बजाए किसी और पर एकाग्र होगा, उसे वहाँ से हटाकर परमात्मा पर एकाग्र करें तो मन उसके पीछे स्वतः ही आ जायेगा जिससे साधना में सफलता मिलेगी।

मधु-भैया, इस मंत्र का जाप करते समय अगर व्यर्थ संकल्प चलें तो क्या करें?

मनोज-मधु, व्यर्थ संकल्पों को समर्थ संकल्पों में परिवर्तन करने के लिए मनन-चिन्तन का अभ्यास बढ़ाएँ। वास्तव में व्यर्थ संकल्प समर्थ स्थिति बनने में विलंब करता है जिससे सम्पूर्णता की मंजिल पर पहुँचने के लिए देरी लगेगी और हमारा नम्बर पीछे रहेगा। इसलिए हर हालत में व्यर्थ को समर्थ में बदलने के लिए मनन करने में दिलचस्पी लें। फलस्वरूप हमारे मन में सदा महान संकल्पों का प्रवाह चलता रहेगा जिससे योगाभ्यास में परम आनंद की अनुभूति होगी।

मधु-भैया, मैं भविष्य में ईश्वरीय ज्ञान का मनन बढ़ाने पर विशेष ध्यान दूंगा।

मनोज-हाँ मधु, इस अभ्यास से मनोबल भी बढ़ता है, मन में सदा उत्साह, साहस और हर्ष रहता है। हीन भावना समाप्त होकर आत्मा सहज ही स्वमान में स्थित हो जाती है और मन की स्थिरता बढ़ती है।

मधु-भैया, इस 'मन्मनाभव' मन्त्र में टिकने से और कौन से लाभ होते हैं?

मनोज-अनेक जन्मों से माया के विभिन्न महारोगों से पीड़ित मन निरोगी बनता है और अतीन्द्रिय सुख के झूले में झूलने लगता है।

शक्तिशाली मन से अनेक आत्माओं को शान्ति और शक्ति का दान देने की बेहद मनसा सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

मधु-(बेहद नम्रभाव से)-मनोज भैया, मेरे अंधेरे मन में ज्ञान का प्रकाश प्रदान करके आपने उजाला कर दिया। एक ही साथ मेरे हृदय में हजारों आशाओं के दीपक जला दिये, कैसे धन्यावाद व्यक्त करूं, आपकी प्रशंसा के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं....ओमशान्ति.....

डीमापुरः आध्यात्मिक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए सुप्रसिद्ध व्यापारी भ्राता रामकुमार शर्मा जी।

नन्द गढ़: भ्राता हनजी 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के अन्तर्गत हुए कार्यक्रम में बोलते हुए

बम्बईः सिंधी चैटी के मेले में प्रदर्शनी के चित्रों पर समझाती हुई ब्र. कु. प्रतिमा बहिन।

अलवरः आध्यात्मिक प्रदर्शनी में ब्रिगेडियर भ्राता श्रीरामलू तथा अन्य सैनिक अधिकारियों को चित्रों पर समझाती हुई ब्र.कु. सुधा बहिन।

जगदीश चन्द्र हसीजा, मुख्य सम्पादक, ब्र. कु. आत्म प्रकाश, बी ९/ १९ कृष्णा नगर, दिल्ली द्वारा सम्पादन तथा ओम शान्ति प्रैस कृष्णा नगर, देहली-५१ से छपवाया Regd No. 10563/65-D. (E)-70 Laser Typesetting at Samira Graphics Krishna Nagar, Delhi-51